A GUIDE
TO
Character-building.

चरित्र-शिक्षा।

—:o:—

लेखकः—

जगदीश नारायण तिवारी

—:o:—

प्रकाशकः—

पुस्तक मन्दिर

छपरा।

शाखाः—३४ आरमेनियन स्ट्रीट

कलकत्ता।

प्रथम बार } दिसम्बर १९३२ { मूल्य ।) चार आने

प्रकाशकः
श्री रामेश्वर पाण्डेय,
व्यवस्थापकः—
पुस्तक मन्दिर।
छपरा।

मुद्रकः—
नेशनल प्रेस,
भुवनारायण तिवारी.
१५४, मछुआबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता।

मंगलाचरण

हे विघ्नहर, गजवदन, अघ-अज्ञान-ओघ हटाइए।
दुर्भावनाओं दुर्गुणोंको शीघ्र देव, घटाइए॥
माता-पिता-प्रति भक्ति-शिक्षा पा सभी कृतकृत्य हैं।
स्वामिन्, दया-भिक्षा हमें दें, विनय करते नित्य हैं॥
सद्-बुद्धि-विद्या-बल-विवेक-विचारसे हम युक्त हों।
पाखण्ड, पाप, प्रपञ्च, पामरतादिसे उन्मुक्त हों॥
हे व्यास-मद-मर्दन हमारी लेखनीमें ओज हो।
कवि चन्द-भूषण-सूर-तुलसी-सरिस नूतन खोज हो॥
राणा प्रताप, शिवा, शिवा-सुतसम प्रतापी वीर हों।
लव-कुंश-सुभद्रा-सुत-हकीकत राय-सम गम्भीर हों॥
हों हम तपी अरविन्द सम, गाँधी सरिस सत्याग्रही।
हों शुद्ध बुद्ध-समान हम, होवें न क्रुद्ध दुराग्रही॥
हो उच्च मस्तक विश्व-राष्ट्रों-मध्य भारतवर्षका।
उमड़े उदधि सुख-शान्ति का, उत्साहका, उत्कर्षका॥
स्वाधीनताके मार्गके सब विघ्न-बन्धन चूर्ण हों।
इस भव्य भारत-राष्ट्रके सारे मनोरथ पूर्ण हों॥

क्लास-क्लास, छात्र-छात्र और स्कूल-स्कूलमें प्रतिद्वन्द्विता होनी ही चाहिए। इससे अपना और स्कूलका भी गौरव बढ़ता है। बहुतसे लड़के इससे जी चुराते हैं—यह ठीक नहीं। प्रतियोगिता में उत्साह और साहसपूर्वक भाग लेना चाहिये।

(४) विनम्रता—जब अध्यापक समझा रहे हों, तब उन्हें छेड़ना ठीक नहीं। उनके समझा लेनेपर जो बात समझमें न आये उनसे पूछना चाहिये। उनसे कोई भी प्रश्न विवाद या बहस के रूपमें नहीं पूछना चाहिये, परीक्षा-रूपमें भी कोई प्रश्न पूछना ठीक नहीं। अपनी जानकारीके लिये आवश्यक प्रश्न नम्र शब्दोंमें शिष्टतापूर्वक पूछे जा सकते हैं। अपने निर्णयको उनके निर्णय पर छोड़ देना चहिये। यदि आवश्यक प्रश्न पूछने पर भी वे तुम्हें चुप कर दें तो बुरा न मानना चाहिये।

(५) धैर्य्य—यदि कोई कठिन प्रश्न उपस्थित हो तो घबराना नहीं चाहिये। बार-बार उसपर मनन करना चाहिये। उसे बार २ समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये। कठिन समझकर छोड़ देना कायरता है। परिश्रम और धैर्य्यसे कोई कार्य्य कठिन और असम्भव नहीं। कठिन-से-कठिन पत्थर भी रस्सीकी रगड़से घिस जाता है।

(६) उदारता—यद्यपि एक-दूसरेसे प्रतिद्वन्द्विता करनी अच्छा है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि यदि किसी साथीको कुछ दन्ड मिले तो हँसें। यदि कोई साथी कुछ पूछे तो उसे उदारता

पूर्वक बतला देना चाहिये। कुछ मांगे तोभी हो सके तो देना चाहिये। एक दूसरेके साथ भाई-भाईकी तरह बर्ताव होना चाहिये। यदि क्लासमें कोई गरीब भाई हो तो जहांतक हो सके उसे सहायता देनी चाहिये। बाल्यावस्थासे ही लूले-लङ्गड़ेको एक दो पैसे देनेकी आदत रहनेसे बड़ा होने पर सेवा-भावकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है। छोटे-बड़े और धनी-गरीबका भाव मनसे निकाल देना चाहिये।

भोजन

(१) उद्देश—शरीर-पुष्टि और शरीर-रक्षाके साथ-साथ मानसिक पवित्रताका ध्यान रखना परमावश्यक है। जानवरोंकी तरह जैसे-तैसे पेट भर लेना मात्र मनुष्यका कर्तव्य नहीं। हमें यह समझना चाहिये कि हमें देव-कार्य्य करना है, ईश्वरकी सेवा करनी है, इसी निमित्त शक्तिकी आवश्यकता है, और इसीलिये हम भोजन करते हैं। हमारे आचार्य्योंने कहा है कि खाते समय भी न भूलो कि हमें देव-जीवन विताना है, हम देवता हैं।

(२) सन्तोष—पवित्र-भावना लेकर पवित्र, साफ भोजन करना चाहिये। अच्छे-से-अच्छा भोजन भी मिले तो भूखसे अधिक नहीं खाना चाहिये। थोड़ी भूख रखकर खानेसे पाचन शक्ति ठीक रहती है। अधिक खा लेनेसे मेदेको विशेष काम करना पड़ता है और वह खराब हो जाता है। मेदेकी खराबी से अनेक बीमारियां हो जाती हैं। छोटे-छोटे कौर बनाकर

फिर शौच-कर्म्म करना चाहिए। बहुतसे लोग पायखानेमें भी कुछ सोचा करते हैं या जल्दीबाजी करते हैं। ऐसा करना अच्छा नहीं। यदि पायखाना गन्दा हो तो उसे अपने हाथसे साफ कर लेना चाहिये। गन्दे पायखानेमें शौच ठीक नहीं होता और गन्दी हवा सांस द्वारा भीतर जाती है, जिससे तरह-तरह की बीमारियां पैदा होनेका डर रहता है। महात्माजीने हम लोगोंके समक्ष अपने हाथों पायखाना साफ करनेका उदाहरण पहले पहल उपस्थित किया।

शौचसे निवृत्त होनेके बाद मिट्टीसे हाथ साफकर दांतनसे दांतोंको साफ करना चाहिये। डाक्टरोंकी सम्मति है कि सब बीमारियोंकी जड़ गन्दे दाँत हैं। गन्दे दाँतोंके कारण पेटकी बीमारियाँ पैदा होती हैं और पेटकी आँतें तक सड़ जाती हैं।

तत्पश्चात् स्नान करना चाहिये। मोटे गमछेसे देह मल-मलके स्नान करना चाहिये। स्नानके बाद साफ कपड़े पहिनना चाहिए। गन्दे कपड़ोंसे लगकर जो हवा रोम-कूपोंमें जाती है, वह गन्दी होनेसे स्वास्थ्यको हानि पहुंचाती है। इसके बाद व्यायाम करना आवश्यक है। व्यायाम करनेके एक घन्टे बाद कुछ भोजन करना चाहिये। दूध पीना अधिक उपयुक्त है। फिर पढ़ना चाहिये और पाठशाला जानेके पूर्व, भोजन कर अपनी उस दिन की पढ़ायी जानेवाली पुस्तकें लेकर पाठशाला जाना चाहिये। रास्तेमें अड़ना या किसीसे गन्दी बात या गपशप करते जाना ठीक नहीं है। पाठशालामें समयसे पहले यदि

पहुँच जायँ तोभी ऊधम नहीं करना चाहिये। शान्तिपूर्वक अपनी कक्षामें जाकर बैठ जाना चाहिये और जो पाठ गुरुजी आरम्भ करनेवाले हों उसकी तैयारी कर रखनी चाहिये।

क्लास

क्लासमें निम्न बातोंकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

(१) शान्ति—चुपचाप बैठना चाहिए। कोई शब्द या कोई संकेत ऐसा नहीं करना चाहिये, जिससे पड़ोसीका ध्यान बँटे और उसकी शान्ति भङ्ग हो। विद्वानोंमें आरुणीका नाम प्रसिद्ध है। वे जब क्लासमें बैठते थे, तो इतने ध्यानस्थ और शान्त होकर बैठते थे कि बहुतसे लोग क्लासमें उनको बैठे देखकर उनसे शिष्टताका पाठ लेने जाते थे।

(२) ध्यान—विद्यार्थियोंका ध्यान केवल अध्यापककी ओर ही नहीं जाना चाहिए, बल्कि उन सहपाठियोंकी ओर भी, जिन से वे प्रश्न पूछते हों। यदि पाठमें विशेष कठिनाई जान पड़े, कोई कठिन विषय आ उपस्थित हो, तो और भी विशेष ध्यान देना और संकोच छोड़ नम्रतापूर्वक प्रश्न कर समाधान कर लेना चाहिए। बहुतसे लड़के जान-बूझकर अध्यापककी दृष्टिसे बचनेके लिये सबसे पीछे बैठते हैं, सिर नवाये जाते हैं और हाथ-पाँव हिलाते रहते हैं। यह आदत बहुत बुरी है।

(३) प्रतियोगिता—पारस्परिक उत्साह बढ़ानेके लिये प्रतियोगितासे बढ़कर और कोई उपाय नहीं। समय-समयपर

चरित्र-शिक्षण

नित्य-कर्म

तको प्रतिदिन ६ बजे सोना और ५ बजे उठ जाना चाहिये। सोनेके लिये बिस्तरेपर जानेके बाद शान्त-चित्त हो भगवानका नाम लेते हुए यह प्रार्थना करनी चाहिये, "भगवन्, आपकी दयासे आजका दिन सानन्द बीत गया। अब मैं अपने को आपके हाथों सौंपकर सोता हूं। मुझे अपनी सुधि नहीं रहेगी। आप अपनी हस्तच्छायासे मेरी रक्षा करें।" फिर मनमें यह विचारकर कि सवेरे ठीक समयपर ५ बजेके पूर्व उठ जाना है, आँखें बन्दकर सो जाना चाहिये।

प्रातःकाल ५ बजे उठना चाहिए। हरि-नाम लेते हुए उठनेका अभ्यास डालना चाहिये। शान्त, नम्र और आलस्य-हीन हो उठना चाहिए। बहुतसे लोग जगे रहने पर भी करवटें बदलते रहते हैं। आलस्यके मारे उनसे उठा नहीं जाता, समय व्यर्थ खोते हैं। यह आदत अच्छी नहीं। उठनेपर मुँहसे जो पहिला शब्द निकले, मनमें पहिला विचार आये—वह ईश्वरके सम्बन्धमें ही होना चाहिये। पहिला काम भी यह प्रार्थना होनी चाहिये, "भगवन्, अब मैं आपकी इच्छाके पूर्त्ति-निमित्त कर्म्मोंको करनेके लिये उठ गया। मैं केवल आपकी गौरव-वृद्धिके लिये कर्म्म करूंगा। कृपया मुझसे कोई ऐसा कर्म्म न होने दें जो निन्दनीय हो।"

खूब चबा-चबाकर खाना चाहिये। इससे भोजन जल्द पच जाता है, और मल-पेचिशकी बीमारी नहीं होती।

(३) प्रसन्नता—बहुतोंकी आदत होती है कि वे झनझन-पट-पट किये बिना खाते ही नहीं। खाते समय भी जोरसे बोलते, जोरसे हँसते और हल्ला करते रहते हैं। बहस भी करते रहते हैं। यह ठीक नहीं। जो कुछ भोजन मिले उसे ईश्वरका प्रसाद समझ प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करना चाहिये। भोज्य-सामग्रीके ऊपर कटाक्ष या उसकी आलोचना नहीं करनी चाहिये।

(४) सफाई—खानेकी जगह साफ न हो तो साफ कर करा लेनी चाहिये। खाते समय फर्शपर जूठा न गिरे, इसका ख्याल रखना चाहिये। भोजन इस तरह सानकर खाना चाहिये कि गन्दा न मालूम हो।

(५) कृतज्ञता—भोजन आगे आजानेपर ईश्वरका नाम लेकर उसे ईश्वरार्पण करके खाना चाहिये। खानेपर मनमें कृतज्ञताका भाव लाना चाहिये।

(६) आचमन—खानेके बाद धीरेसे उठकर जाना चाहिये। पानी गिरानेके स्थानपर बैठकर हाथ धोना चाहिये। दांत अच्छी तरह साफ करना चाहिये।

——:०:——

मनोविनोद

—:*:—

म्भीरता एक गुण है। बालकालमें यौवन-सुलभ चंचलता होती है। सबको गम्भीर होना भी चाहिये। किन्तु नीरस उदासीन जीवन मानसिक उर्वरताको नष्ट करता है। जिस प्रकार खेतको उर्वर बनानेके लिये खाद चाहिये, उसी प्रकार मस्तिष्कको उर्वर बनानेके लिये मानसिक प्रसन्नताकी आवश्यकता है। प्रसन्नताके लिये हँसना-खेलना आवश्यक है। हँसनेसे पेट और सिरकी नसोंमें रक्त सवेग प्रवाहित होता है। इससे स्वास्थ्य ठीक रहता है।

बहुतसे लोग गन्दी दिल्लगी किया करते हैं। इससे उनकी जबान गन्दी हो जाती है। गम्भीरता तो नष्ट होती ही है, स्वभाव बिगड़ जाता है, जबानपर प्रतिबन्ध नहीं रहता। अनर्गल बातें करनेकी आदत पड़ जाती है। शिष्टता और शील-संकोच नष्ट हो जाते हैं। मनुष्यके चरित्रका ठीक-ठीक पता उसी समय लगता है, जब वह मित्रोंकी मण्डलीमें बैठकर गप-शप और हास्य-विनोद करता है। इसलिये गन्दी बात हँसीके समय भी मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये।

बहुतसे लोग गपशप, वाद-विवाद और लम्बी-लम्बी बहसें करके समयको नष्ट करते हैं और दिमागको गन्दा एवं परेशान

कर डालते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिये। इससे कहीं अच्छा है कोई खेल खेलकर जी बहलाना। परन्तु वह खेल ताशकी तरह कुर्सी पर बैठकर खेला जानेवाला न हो। विशेष लाभदायक वह खेल होता है, जिसमें शारीरिक परिश्रम करना पड़े। इससे बदनके अङ्ग-अङ्ग पर जोर पड़ेगा और अङ्ग मजबूत होंगे।

बहुतसे लोग खेलमें भी झूठ बोलते हैं। झूठ कभी न बोलना चाहिये। खेलके समय विशेष सावधान रहना चाहिए। हार जाना झूठ बोलकर जीतनेकी अपेक्षा अच्छा है।

खेलते समय तुम्हें ऐसे साथी भी मिलेंगे जिनका स्वभाव रूखा होगा, जो झगड़ालू होंगे, और जो अपनी बातके सामने तुम्हारी बात न मानेंगे। भरसक ऐसे लड़कोंका साथ न करना चाहिये। यदि ऐसे भी साथी हों तो उनसे झगड़ा नहीं करना चाहिये, बल्कि जहांतक हो उन्हींकी बात मान लेनी चाहिये; क्योंकि अपना उद्देश तो झगड़ा या हार-जीतके लिये लड़ना नहीं, बल्कि दौड़ या खेल कूदकर आनन्द लेना और स्वास्थ्य बनाना है। फिर खेलमें हारने-जीतनेसे कुछ आता-जाता भी तो नहीं। इसलिये कभी क्रोध या लड़ाई-झगड़ा करना ठीक नहीं। उत्तेजनामें आनेकी अपेक्षा हँस-मुसकराकर मीठा उत्तर दे देनेसे दूसरोंके ऊपर बहुत प्रभाव पड़ता है। अनुचित संकेतसे काम लेना अपराध समझा जाता है।

वादविवादसे तर्क और भाषण-शक्ति बढ़ती है। इसीलिये उत्तम विषयोंपर वादविवाद भी कभी-कभी हो तो अच्छा।

किन्तु इसका भी आधार सत्य, शान्ति, धैर्य्य और नम्रता ही होना चाहिये। तार्किक पटुता दिखलाना एक गुण है, किन्तु मिथ्या हठ या दुराग्रहका आश्रय लेना उचित नहीं। तार्किक पटुतामें मिथ्यावादिताका आश्रय लेना महान दोष और चरित्रहीनताका द्योतक है।

——:o:——

कार्य्यावली की जांच

यः देखा जाता है कि बहुसे विद्यार्थी समय व्यर्थ खोते हैं। इसका मुख्य कारण है कि वे अपने सामने प्रतिदिनका कार्यक्रम नहीं रखते या जो कार्यक्रम बना रखते हैं वे उसके अनुसार प्रत्येक कार्यको ठीक समयपर नहीं कर पाते। अतः प्रत्येक दिनका कार्य-क्रम उसके पूर्व दिन ही बना लेना चाहिये। प्रत्येक दिनका कार्य समाप्त हो जाने पर अवकाशके समय कार्य्यावलीकी जाँच कर लेनी चाहिये। इससे मालूम हो जायगा कि कौनसा कर्त्तव्य कर्म करनेको शेष रह गया और कहाँ त्रुटि रह गई। जहांकहीं त्रुटि रह गई हो उसे सुधार लेना चाहिये, जिससे पुनः वही भूल न हो। निम्न बातोंकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये—ईश्वरके प्रति जो हमारे धार्मिक कर्त्तव्य हैं, उनका पालन समुचित रूपसे मैंने किया? कहीं सुस्ती तो नहीं हुई? ईश्वरीय नियमों और आज्ञाके विरुद्ध तो कुछ काम नहीं कर डाला?

अपने किसी साथी या पड़ोसीसे आज मैंने झगड़ा या दुर्व्यहार तो नहीं किया? किसीके प्रति घृणा, दुर्भावना या या प्रतिशोध लेनेकी भावना तो मनमें नहीं है?

मैं अपनी वृत्तियोंको संयत करनेमें कहांतक सफल रहा? लोभवश चोरी या कामनावश क्रोध तो नहीं किया? अपने स्वार्थ या दूसरोंको हानि पहुंचानेकी इच्छासे झूठ तो नहीं बोला? निज आचरण या परनिन्दा-द्वारा अन्य मित्रोंके सामने कोई बुरा उदाहरण तो नहीं उपस्थित किया?

अपने शिक्षकों या माता-पिताकी आज्ञाओंका ठीक ठीक पालन तो किया? उनकी किसी कड़ी आज्ञाका पालन करते समय मनमें या उनके पीठ-पीछे हमने उनकी निन्दा तो नहीं की? उनका या अन्य बड़ोंका सम्मान तो किया?

अपनी पोशाक, सुन्दरता या सुख-सामग्रीके कारण किसी साथीको छोटा तो नहीं समझा या अभिमान तो नहीं किया?

प्रार्थना, पढ़ाई या क्लासके कामोंमें सुस्ती तो नहीं की?

इतना विचार कर लेनेपर शान्त-चित्त हो अपने अपराधोंके लिये ईश्वरसे क्षमा-याचना और भविष्यके लिये कर्त्तव्य-पालनकी क्षमताके लिये प्रार्थना करनी चाहिये।

हमारे प्रत्येक दिनका आरम्भ और अन्त परमात्मा के साथ होना चाहिये।

जो लोग अपनी कार्य्यावलीकी जाँच प्रति दिन नहीं करते उन्हें अपने दैनिक लाभालाभका पता नहीं लग सकता और इसका पता लगे विना हमारी सफलता अधिकांशमें अनिश्चित रहती है। दैनिक दिनचर्य्याका हिसाब न रखनेवाला

उसी व्यापारीके समान है जिसका अपना हिसाब ठीक न रखने के कारण दिवाला निकल जाता है। अपने दोषोंका ठीक-ठीक पता लगाना और उनको सुधारनेके लिये रात्रिको विस्तरेपर जाकर प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर विस्तरेपर जाने तकके बीच किये हुए अपने समस्त कर्मोंकी जांच आत्मसुधारकी सच्ची और शुभकामनासे करनी चाहिए। केवल कर्म्मोंका ही क्यों, मनमें उठे हुए विचारों और जिह्वासे उच्चारित वचनोंकी भी जांच करनी चाहिये।

यदि दुर्भाग्यवश कुछ अपराध हुआ जान पड़े तो यथासम्भव शीघ्र उसे स्वीकार करना, उसकी पुनरावृत्ति न हो-एतदर्थ सचेष्ट रहना और परमपिताके सम्मुख विनीत भावसे अपने अपराधके लिये क्षमा-याचना करनी चाहिये। तत्पश्चात् परमात्माका स्मरण करते हुए सो जाना चाहिए।

मानव-जीवन बहुत बहुमूल्य है। ऊँचा उठने यानी देवत्व प्राप्त करनेका उपयुक्त साधन है। इस साधनसे लाभ उठाना परम आवश्यक है। ईश्वर उन्नतिके बीज-संस्कार डालकर मनुष्यको यहां भेजता है। यदि उसको नष्ट न कर सावधानी पूर्वक कुटिल-कीड़ों (विषय-वासनाओं) से बचाकर उसको पूर्ण विकासका अवसर दिया जाय तो उससे वह वृक्ष तैयार हो, जिसकी छाया-तले विश्वके कोटि-कोटि जन-पक्षी विश्राम लें और देव-दुर्लभ आनन्दका उपभोग करें। इस भावनाको लक्ष्में रखकर बालकोंको उन्नतिशील होना चाहिये। उन्नति तीन

प्रकारका होता है—(१) शारीरिक, (२) मानसिक और (३) आध्यात्मिक।

प्रायः देखा जाता है कि पहलीसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी अधिक मूल्यवान है, यद्यपि तीनोंका समन्वय अत्यावश्यकीय है। तीनोंका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, इसीलिये आवश्यक भी हैं। पहलीपर दूसरी और दूसरीपर तीसरी अवलम्बित है। इसके अपवाद कम देखनेमें आते हैं। अतः प्रत्येक विद्यार्थीका कर्तव्य है कि पहले विचार ले कि जो कोई काम वह करने जा रहा है, वह इन तीनोंकी ओर अग्रसर करनेवाला है या नहीं। यदि बाधक हो तो वह काम वहीं छोड़ दिया जाना चाहिये।

कुछ लोगोंकी सम्मति है कि विद्यार्थी-जीवनमें आध्यात्मिक उन्नतिकी साधना नहीं की जा सकती। किन्तु यह भयङ्कर भूल है। तीनोंकी साधनाका आरम्भ बाल-कालमें ही होना चाहिये। अब इस बातपर विचार करना चाहिये कि इन तीनोंके लिये कैसी कार्य्यावली निश्चित की जाय। शारीरिक उन्नतिके लिये ब्रह्मचर्य्य, व्यायाम, नियमित भोजन-पान और वायु-सेवन, मानसिक उन्नतिके लिए अध्ययन, और आध्यात्मिक उन्नतिके लिये ईश्वर-प्रार्थना, स्वाध्याय और सत्सङ्ग आवश्यक हैं। इन्हीं विषयोंपर हम आगे विचार करते हैं।

ब्रह्मचर्य्य

—:※:—

ह महाव्रत है। जीवनका चार सोपानोंमें प्रथम सोपान है। इसीपर जीवनकी अधिकांश सफलता निर्भर है। ब्रह्मचर्य्यसे साधारण-तया जननेन्द्रिय-निरोध ही समझा जाता है; किन्तु यह इसका संकीर्ण अर्थ है। ब्रह्मकी शोधमें जो हमारी चर्य्या यानी शुद्ध आचरण है उसीके पालनको ब्रह्मचर्य्य-पालन कहते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि विना ब्रह्मचर्य्य व्रत-पालन किये ब्रह्म-प्राप्ति या मुक्ति असम्भव है, अतएव मनुष्य-जीवन भी व्यर्थ ही है।

आजकल देशके दुर्भाग्यसे देशमें बालविवाहकी प्रथा प्रच-लित है। माता-पिता मिथ्या मोहमें पड़ अपने बालकोंका बाल्यावस्थामें ही विवाह कर उनकी उन्नतिके मार्गको अवरुद्ध कर देते हैं। अतः बालकोंको स्वयं भी सचेष्ट रहना चाहिये और यदि आवश्यकता पड़े तो ऐसी अवस्थामें माता-पिताका भी विरोध कर अपनी उन्नतिके मार्गको प्रशस्त बनाना चाहिये।

हमारा आदर्श तो आजन्म ब्रह्मचारी रहना है। हमारे देशमें प्राचीन कालमें आजन्म ब्रह्मचारियोंकी कमी नहीं थी। किन्तु विद्यार्थी-कालमें तो यथोचित रूपसे ब्रह्मचर्यका पालन नितान्त आवश्यक है। कम-से-कम पचीस वर्षकी अवस्था तक तो विद्यार्थी-जीवन बिताना चाहिये।

बहुतसे विद्यार्थी कुसङ्गमें पड़कर अविवाहित होने पर भी अपना ब्रह्मचर्य्य व्रत भंग कर देते हैं। इसका परिणाम बहुत बुरा होता है। व्रत का निबाहना कठिन होता है। किसी भी व्रतका पालन मन-वचन-कर्म्म—तीनोंसे होना चाहिये। बहुतसे आदमी लज्जा या संकोचवश अपने शरीरसे तो इस व्रतका पालन कर लेते हैं, किन्तु उनका मन इधर-उधर भटका फिरता है। मनके ऊपर अधिकार हुए बिना पूर्ण रूपसे ब्रह्मचर्य्यका पालन असम्भव ही है; क्योंकि जहां मन है वहां शरीर किसी-न-किसी दिन अपने आप खिंच ही जाता है। वचनसे भी चित्त चंचल करनेवाली बात बोलना या सुनना हानिकर है।

ब्रह्मचर्य्यके लाभोंके बारेमें कुछ अधिक कहना व्यर्थ है। इसके पालनसे शौर्य्य-वीर्य्यकी वृद्धि तो होती ही है; साहस, गाम्भीर्य्य, सहिष्णुता, तेज आदि अनेक सद्गुण अनायास ही ब्रह्मचारीके पास आ जाते हैं। सारा जीवन सुखमय बीतता है। आरोग्यताकी सफल कुञ्जी ब्रह्मचर्य्य ही है। ब्रह्मचारीके पास रोग फटकने नहीं पाते। उनकी इन्द्रियाँ सबल, शरीर सुगठित और मन शुद्ध होता है।

जो विद्यार्थी इस व्रतका पालन करते हैं, उनका मस्तिष्क उर्वर रहता है। उनकी बुद्धि तीव्र, ज्ञान पवित्र और मेधा (धारणा-शक्ति) प्रबल होती है। वे प्रकाण्ड विद्वान होते हैं। वेही विश्व-वैचित्र्यके आविष्कारक और ज्ञान-विज्ञानके पंडित होते हैं।

जो इस व्रतका पालन किये बिना असमय ही गार्हस्थ्य-जीवन में प्रवेश कर जाते हैं वे अवश्य किसी-न-किसी रोगके शिकार

होते हैं, फल-स्वरूप उनकी सन्तान भी दुर्वल और रोग-ग्रस्त होती है। ब्रह्मचर्य्यके पालन विना स्वर्गाश्रम-तुल्य गृहस्थाश्रम नरकाश्रम बन जाता है।

भोजन-पान

रीरिक गठन नियमित भोजनकी व्यवस्था रखे विना असम्भव है, ब्रह्मचर्य्य-व्रतका पालन भी असम्भव ही है। अतः खाद्याखाद्यपर विचार कर लेना आवश्यक ही है।

भोजनके सम्बन्धमें भोजनके प्रकार, परिमाण, गुण, सफाई और नियमितता पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

प्रकार—कृष्णभगवानने गीतामें तीन प्रकारके भोजन वतलाये हैं। सात्विक, राजस, और तामस।

सात्विक—आयु, वुद्धि, वल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको वढ़ानेवाले एवं रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे मनको प्रिय भोज्य पदार्थ सात्विक पुरुषको प्रिय होते हैं।

राजस—कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, अति गर्म, तीक्ष्ण, रूखे, दाहकारक एवं दुःख, चिन्ता और रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार राजसी पुरुषको प्रिय होते हैं।

तामस—अधपका, नीरस, दुर्गन्धयुक्त, बासी, उच्छिष्ट और अपवित्र भोजन तामसी पुरुषोंको प्रिय होते हैं।

प्रायः देखा जाताहै कि राजस और तामस भोजनकी ओर लोगोंकी विशेष रुचि होती है। अतः इनसे परहेज कर सात्विक भोजनकी ओर रुचि फेरना आवश्यक कर्त्तव्य है। इसके लिये आवश्यक है कि स्वादपर ध्यान न देकर भोजनके गुणपर विशेष ध्यान दिया जाय। इस प्रकार जिह्वाको संयममें लानेका अभ्यास हो जायगा और चित्त शान्त रहने लगेगा।

परिमाण—कितना भोजन करना चाहिये ? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि भूखके अनुसार, बल्कि उससे भी थोड़ा कम। बहुतसे लोग ठूँस-ठूँसकर खा लेते हैं और खासकर रुचिकर स्वादिष्ट भोजन पानेपर या निमन्त्रण या त्योहारके अवसरोंपर। इससे उनके मेदेको शक्तिसे बाहर असाधारण शक्तिसे उसको पचानेके लिये काम करना पड़ता है और मेदा कमजोर हो जाता है; जिससे अपच, कै, मल, दस्त आदिकी बीमारियां हो जाती हैं और पेट और शरीर नरक बन जाता है। भोजनसे खून बनना बन्द हो जाता है और शरीर पीला पड़ जाता है। अस्तु, भोजन भूखसे कुछ कम और रातको अवश्य ही कम किया जाय; क्योंकि रातको रुधिरकी गति मन्द रहती है। अधिक भोजन करनेसे रातको नींद भी ठीकसे नहीं आती।

पेय पदार्थोंमें पानी बिना आदमी रह नहीं सकता। हवाके

बाद जीवनके लिये पानीही सबसे आवश्यक है। पानी बिना भोजन पक नहीं सकता। खाते समय भी पानीकी आवश्यकता होती है। भोजन करते समय यदि प्यास मालूम हो तोभी अल्प मात्रामें ही पानी पीना चाहिये। भोजनके समय पानी पीनेसे सर्दी होनेका डर रहता है, साथ ही पाचन-शक्ति भी कम होती है। भोजनके घंटेभर बाद पानी पीनेसे खाया हुआ भोजन पचता है, जिससे खून और बल बढ़ता है। कुंएका पानी साफ कपड़ेसे छानकर पीना चाहिये।

पानीके बाद दूध सबसे पुष्टिकारक पेय पदार्थ है। प्रातः-काल गायके स्तनसे दूहा हुआ गर्म दूध बड़ा लाभकारी होता है। इससे पाचन-शक्ति ठीक और मेदा साफ रहता है, जिससे बल और ओज बढ़ता है। विद्यार्थियोंके लिये दूधका सेवन आवश्यक और उपयोगी है। रुग्ण या गन्दी जगहमें रखा हुआ गायका दूध बड़ा हानिकर होता है। गन्दे बर्तनमें दूध नहीं दुहना या पीना चाहिये। आजकल चाय, कहवा, शराब आदि कई पेय पदार्थोंका प्रचलन हो गया है, किन्तु भारत जैसे गर्म देशमें इनके व्यवहारसे हानि-ही हानि है। दुर्भाग्यवश भारत भी इस रोगसे रुग्ण है, और भारतीय विद्यार्थी भी इसके शिकार बन गये हैं। विद्यार्थियोंको सावधान रहना चाहिये।

—:०:—

व्यायाम

रीर-रक्षाके लिये जैसे भोजन आवश्यक है, वैसे ही व्यायाम भी। किये हुए भोजनको पचानेके लिये शरीरको हिलाने- डुलाने, कार्य्य करने और विशेषतया व्यायामकी आवश्यकता होती है। बहुतसे लोग खाते तो खूब हैं, किन्तु खाया भोजन पचा नहीं सकते; अतः रुग्ण रहते हैं। आलसी आदमी अवश्य रुग्ण और निकम्मे होते हैं, और प्रायः वे ही आलसी होते हैं, जो व्यायाम नहीं करते। जिस प्रकार कठोर लोहेको मुर्चा खा जाता है, उसी प्रकार सुन्दर-से-सुन्दर और स्वस्थ-से-स्वस्थ शरीरको आलस्य, अकर्मण्यता और व्यायामाभाव नष्ट कर देते हैं।

विद्वानोंका कथन है कि रुग्ण और निर्वल रहना पाप है। जीवन-युद्धमें सफलता-लाभ करनेके लिये योद्धा बनना होगा और बिना बल, पराक्रम और साहसके कोई योद्धा बन नहीं सकता। अतः विद्यार्थियोंका परम कर्त्तव्य है कि सबल और साहसी बननेके लिये व्यायामका अभ्यास करें।

व्यायाम प्रतिदिन और निश्चित समयपर ही करना चाहिये। किसी दिन करने और किसी दिन न करने या किसी दिन किसी समय और किसी दिन किसी समय करनेसे व्यायाम

हानिकर सिद्ध होता है। प्रतिदिन प्रातःकाल ४-५ बजेके बीच उठकर नित्यक्रियासे निवृत्त हो खुले स्थानमें, जहां शुद्ध वायुका आवागमन हो, व्यायाम करना चाहिये।

व्यायाम करते समय इस बातका विचार रखना चाहिये कि व्यायाम अपनी शक्तिके अनुसार ही करें। शक्तिसे अधिक व्यायाम करनेसे लाभ नहीं होता। आरम्भमें थोड़ा व्यायाम करना चाहिये और धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाना चाहिये।

व्यायाम कई तरहसे किया जा सकता है। भारतीय ढङ्गसे दंड, बैठक, मुग्दर फेरना और चौका-कबड्डी खेलकर व्यायाम किया जा सकता है। हाकी, फुटबाल या जिमनास्तिक खेलोंके अभ्यास द्वारा भी पाश्चात्य ढङ्गसे व्यायामका अभ्यास किया जा सकता है। प्राणायाम-साधन, आसन-अभ्यास, और दो-तीन कोस टहलना या मैदानमें दौड़ना भी व्यायाम ही है।

नदी, तालाब, झील और समुद्रके किनारे और फुलवाड़ी या बागीचेमें सबेरे टहलना या तैरना भी स्वास्थ्यके लिये लाभप्रद है।

राष्ट्रकी इस पतनावस्थामें भी भारतके गांवोंमें ऐसा कोई गांव नहीं, जहां अखाड़े न हों। इन्हीं अखाड़ोंमें शिक्षा पाकर अर्जुन-भीम आदि महाभारतीय नर-वीरोंने अपने अद्‌भुत शौर्य्य द्वारा विश्वविख्याति पायी थी। नवयुवक विद्यार्थियो, नव्य-भव्य भारतीय राष्ट्रके संरक्षण और इसे विश्वके अन्यान्य उन्नत राष्ट्रोंके समक्ष समकक्ष और उन्नत-मस्तक हो खड़े रखनेका उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है। अतः, व्यायामके अभ्यास द्वारा

लिष्ठ बनो और राष्ट्रको बलिष्ठ एवं सुखी बनाओ। याद रखना, निर्बल होना पाप है।

स्वाध्याय

—:०:—

नसिक और आध्यात्मिक उन्नतिके लिये स्वाध्यायकी उतनी ही आवश्यकता और उपयोगिता है; जितनी कि शारीरिक उन्नतिके लिये व्यायामकी। जिस प्रकार लोहेमें उसका प्रयोग न करनेके कारण मोर्चा लग जाता है, जिस प्रकार शरीर आलस्यके कारण निःशक्त हो जाता है; उसी प्रकार मन और आत्मा भी स्वाध्यायके बिना मृतप्राय हो जाती हैं। स्वाध्यायसे तात्पर्य्य ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके लिये उपदेशपूर्ण सुन्दर-सुन्दर ग्रन्थोंका नित्य प्रति नियमानुकूल पढ़ना है।

पतञ्जलिने अपने 'योग-दर्शन' में "स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः" सूत्र द्वारा यह बतलाया है कि स्वाध्यायसे ही इष्ट देवतासे साक्षात् होता है। एक जगह और भी कहा गया है "स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्माप्रकाशयेत्" यानी स्वाध्याय और योगकी सिद्धिसे परमात्मा प्रकाशित होते हैं।

अब यह विचार करना है कि क्या और कैसे पढ़ना चाहिए।

प्राचीन कालमें पढ़नेसे तात्पर्य्य वेदोंके पढ़नेसे था। ऊपर बतला चुके हैं कि ब्रह्म-विद्याकी प्राप्ति निमित्त पढ़नेको ही स्वाध्याय कहते हैं। यही ठीक भी है; क्योंकि ब्रह्म या सत्यके अनुसन्धानमें आध्यात्मिक, धार्मिक एवं ज्ञान-विज्ञान-विषय-सम्बन्धी ग्रन्थों का ही अध्ययन करना होगा।

इन ग्रन्थोंका अध्ययन आरम्भ करनेके पूर्व यह समझ लेना चाहिये कि हमें सूक्ष्म दृष्टिसे द्रष्टव्य, अदृश्य-गुप्त, रहस्यमय सत्यका अनुसन्धान करना है। अतः हमें उनका अध्ययन एकान्त,—शान्त हो मननपूर्वक करना चाहिये। स्वाभाविक श्रद्धा-भावसे पढ़े बिना अक्षरोंके पढ़ लेनेके बाद भी हम कुछ न समझ सकेंगे और हमारा परिश्रम निरर्थक सिद्ध होगा। इतना ही नहीं, सम्भवतः हम अपना मूलधन भी गँवा सकते हैं।

प्रायः देखा जाता है कि कम पढ़े-लिखे लोग अधिक चरित्र-वान होते हैं और वे ही जब अधिक पुस्तकें पढ़ जाते हैं तब उलझनमें पड़ जाते हैं और सत्यसे पहलेकी अपेक्षा अधिक दूर चले जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे भाषाके पाण्डित्यको भावकी अपेक्षा अधिक प्रधानता देते हैं और भाषाके पण्डित हो भी जाते हैं, किन्तु भावशून्य शुष्क पाण्डित्यसे उनका आत्मिक कल्याण नहीं होता। इससे स्पष्ट ही है कि बहुत अधिक पढ़नेकी अपेक्षा समझ-बूझकर मननपूर्वक थोड़ा पढ़ना और तदनुसार जीवनमें बर्तना कहीं श्रेयस्कर है। कहा भी है:—

"अधिकाधिक जितना पढ़े, नित बहाय तन-स्वेद।
व्यर्थ बिना अभ्यास है, ज्यों गदहे पर वेद॥"

बहुतसे लोग इसलिये पढ़ते हैं कि पढ़-लिखकर द्रव्योपार्जन करेंगे। द्रव्योपार्जनके लक्षको सम्मुख रखकर पढ़नेवाले विद्यार्थी धन कमानेकी मशीन भले हो बन जायं, किन्तु उनमें जीवन नहीं आ सकता। अतः द्रव्योपार्जनके लिये अध्ययन मूर्खता है।

बहुतसे महत्वाकांक्षी पुरुष विख्याति एवं प्रसिद्धि पानेके लिये पढ़ते हैं। किन्तु इसी उद्देशको अनुलक्षकर पढ़ना केवल मिथ्याभिमान है।

आत्मधर्म और आत्म-ज्ञानकी प्राप्ति द्वारा आत्मिक विकासपर जीवन पूर्ण एवं सफल बनानेके उद्देशसे पढ़ना ही उत्तम है।

मानसिक पवित्रता प्राप्त करनेके लिए मनको सत्साहित्य-सुरसरिमें धोना बड़ा आवश्यक है। साहित्य-गंगाकी तरंग मनके विकारोंको धीरे-धीरे हटा मनको शुद्ध कर देती हैं। जैसे गंगाकी धार शीतल-सुखद होती है, उसी तरह साहित्यका रस भी बड़ा मधुर और सुखद होता है। इसलिए विद्यार्थियोंको सत्साहित्यका सेवन करना चाहिए।

साहित्य
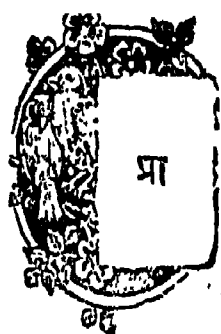
प्राय: देखा जाता है कि लड़के साहित्य, भाषा और लिपिमें क्या अन्तर है, नहीं समझते। ये तीनों एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं।

पूर्वपुरुषों-द्वारा सञ्चित ज्ञान-राशिको साहित्य कहते हैं। हमारे पूर्वज अपने भाव-विचार, ज्ञान-विज्ञान, स्वास्थ्य, धर्म-तत्व आदिके सम्बन्धमें जो अनुभव हम लोगोंके हितार्थ छोड़ गये हैं, वही हमारा साहित्य है। जिसके भीतर हितकी भावना है, और विश्वका हित-साधन जिससे हो—वही साहित्य है।

साहित्य राष्ट्र एवं जातिका प्राण है। जिस राष्ट्रको निर्बल एवं परतन्त्र बनाना हो उसके साहित्यका अपहरण कर ले। शताब्दियोंसे सञ्चित ज्ञान-भंडारको, पुस्तकाकारमें लाकर हमारे पूर्वजोंने हमारा महान उपकार किया है। उस भंडारके सहारे सहज ही हम अपने ज्ञानकी वृद्धिकर अपना कल्याण-साधन करते और अपने एवं जगत्के कल्याणके लिए और अधिक ज्ञानोपार्जनकी चेष्टा करते हैं। यदि ऐसा न होता तो प्रत्येक व्यक्ति अपने नव अनुभवसे विश्वको उतना लाभ नहीं पहुंचा सकता, और विश्व आज जितनी उन्नतिपर है, उससे कहीं पीछे रहता। इसीलिए साहित्य-निर्माण आवश्यक समझा गया, और उसका निर्माण किया गय।

साहित्यका निर्माण देश, काल एवं स्थिति और आवश्यकताके अनुसार हुआ करता है और इसी कारण साहित्य तरह-तरहका होता है। सर्वकालीन सार्वभौमिक साहित्य वही होता है, जिसका विना किसी भेदभावके सत्यके समानाधारपर विश्व-मङ्गलकी कामनासे निर्माण किया गया हो। यही स्थायी साहित्य है। स्थिति, आवश्यकता, काल-विशेष या देश-विशेषके हित-कल्याणकी कामनासे जो साहित्य-निर्माण होता है वह अस्थायी होता है।

हमलोग 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्तको माननेवाले और जगतकी कल्याण-कामना करनेवाले हैं। इसलिए हमारा साहित्य भी स्थायी और विश्वव्यापक होना चाहिए और वह ऐसा ही था भी। जिस साहित्यके प्रचार-प्रसारसे सारा विश्व आलोकित था, जिसने भारतको जगद्गुरु-पदपर आसीन-आरूढ़ कराया था, लौकिक रिद्धियों एवं पारलौकिक सिद्धियोंका जो क्रीड़ास्थल था, वही कुटिलकालके प्रभावसे आज लुप्तप्राय हो गया है। और यही हमारी परतन्त्रताका मुख्य कारण है।

विद्यार्थियो, सत्साहित्यके निर्माणका भार तुम्हारे ऊपर है। उच्च साहित्यिक शिक्षा प्राप्तकर, बचे-खुचे साहित्यका अध्ययनकर, सत्साहित्य-निर्माणमें लग जाओ और मृत-प्राय भारतीय राष्ट्रमें नव-जीवनका संचार करो।

भाषा

—:※:—

पुरुषों द्वारा अर्जित एवं सञ्चित अनुभव एवं ज्ञान जिस भाषामें लिखे गये हों, उस भाषाका वही साहित्य है।

हिन्दकी भाषा हिन्दी है। हिन्दके रहने वाले भी हिन्दी कहलाते हैं। हिन्दियों द्वारा अर्जित विविध-भाव, ज्ञान-विज्ञान, अनुभव-अनुमान आदि यदि हिन्दी भाषामें लिखे गये तो वह हिन्दी-भाषाका साहित्य कहलायेगा।

यों तो हिन्दुस्तानमें सैकड़ों भाषायें बोली जाती हैं; किन्तु सबसे अधिक हिन्द-निवासी हिन्दी भाषाका ही व्यवहार करनेवाले हैं। इसीलिए हिन्दकी राष्ट्र-भाषा हिन्दी हो, ऐसा निश्चय देशके शुभचिन्तकोंने किया है। इस निश्चयने हिन्दी भाषामें नव-जीवनका संचार किया है। हिन्दी चमक उठी है। अल्पकालमें इस भाषाके साहित्य-हारमें अनेक ऐसे ग्रन्थ-रत्न ग्रथित किये गये हैं, जिनकी चमकसे राष्ट्र चमकने लगा है।

आजकल हमारे देशकी परतंत्रताने हमारी भाषाको भी परतंत्र बना दिया है। हमारे बीच विदेशी भाषाओंका प्रचार विशेष रूपसे हो गया है। विदेशी भाषाके प्रचलनने हमारे मनोभाव, मनोवृत्ति, शिष्टता-सभ्यता, पहनाव-पोशाक एवं रहन-सहनको

इतना बदल दिया है, कि हम आज पहचानमें भी नहीं आते। हमारी शिक्षाका माध्यम आज अंग्रेजी है। कोमल-प्रति बालकों को स्कूलमें भेजिये तो सबसे पहले अपनी मातृभाषा 'हिन्दी' की शिक्षा न दे वहां अंग्रेजीकी शिक्षा दी जायेगी। यही कारण है कि हमारे देशके शिक्षित अंग्रेजी बड़े गर्व के साथ बोल सकते है, किन्तु मातृभाषामें न तो स्वतंत्रतापूर्वक बोल सकते हैं, न लिख सकते हैं। बल्कि देशीय भाषामें बोलते लज्जा अनुभव करते हैं। यह कैसी लज्जाकी बात है! हमें अपनी मातृ-भाषाका आदर करना चाहिये, क्योंकि मातृ-भाषाका आदर करना माताका आदर करनेके समान फलद है।

नवयुवको, इसका प्रचार विश्वके कोने-कोनेमें हो और इसका साहित्य विश्व-साहित्यमें सर्वोच्च माना जाय, ऐसा उद्योग करो। याद रहे, भाषाकी स्वतंत्रता राष्ट्रकी स्वतंत्रता है; और भाषाकी परतंत्रता राष्ट्रकी परतन्त्रता। भाषाके विकाशके साथही राष्ट्रका भी विकाश होता है। हिन्दी-भाषाकी कोश-वृद्धि करो और अक्षय कोश-भाण्डारका निर्माणकर अक्षय पुण्यके भागी बनो।

लिपि

—:o:—
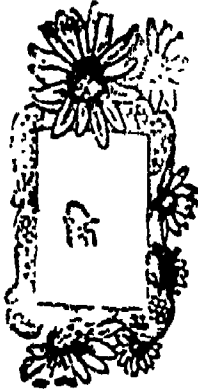
सी भाषाको हम लिख या बोलकर व्यक्त करते हैं। जिस भाषाको लिखनेके लिए जो अक्षर होते हैं वही उस भाषाकी लिपि कहलाती है। हिन्दी-भाषाके लिए नागरी लिपि है। मराठी और संस्कृत भाषाओंकी भी यही लिपि है। बङ्गला और गुजराती भाषाओंकी लिपियां इससे बहुत मिलती-जुलती हैं। इसलिए नागरी लिपिको कई भाषाओंकी लिपि होनेका सौभाग्य प्राप्त है और यह इस लिपिकी विशेषता है।

इसकी दूसरी विशेषता यह भी है कि यह बहुत आसानीसे जल्द सीखी जा सकती है। कई भाषाओंको लिपि नागरी है, इसका यही कारण है।

तीसरी विशेषता इसकी यह है, कि इस लिपिके अक्षरोंमें सब प्रकारके उच्चारण शुद्ध ध्वनिके साथ होते हैं। तभी तो नागरीको 'गुणागरी' भी कहते हैं।

व्यास, वाल्मीकि, वशिष्ट, माघ, भारवि, कालिदासकी लिपि आज पुनः राष्ट्रभाषाकी लिपि होने जा रही है। महात्माजीकी कृपासे यह कार्य्य सरल-सुगम हो गया है। हमारी 'नागरी' फले-फूले।

———

आत्म-निवेदन

— — :o:— —

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।'

ना प्रकारकी कामनाओंकी उत्ताल तरंगें प्रत्येक प्राणीके मन-सागरमें उठा करती हैं। उनमेंसे अधिकांश सारा जीवन सतत सचेष्ट रह अनवरत अधिक परिश्रमपूर्वक लगा-खपा देनेपर भी पूरी नहीं होतीं। अनवरत परिश्रम करनेपर भी यदि मनुष्य सफल-मनोरथ एवं सफल-प्रयत्न नहीं होता तो उसकी स्वाभाविक मानवीय मानसिक दुर्बलता और भी बढ़ जाती है। उनमेंसे कितने तो निश्चेष्ट हो जाते और कितने अपने भाग्यको कोसते, कितने निराश हो जीवन-लीलातक समाप्त कर जाते हैं। बहुत थोड़े प्रेमी ऐसे होते हैं, जो इस परीक्षामें असफल होनेपर भी अफलतामें सफलताकी झलक पा, आशान्वित हो, शक्ति-सञ्चय-हेतु परमात्मासे प्रार्थना करते हैं।

प्रार्थनामें बड़ी शक्ति होती है। जिस इच्छा-आकांक्षाको लेकर मनुष्य प्रार्थना करता है, भगवान उसकी पूर्ति तो करते ही हैं, परमात्माके प्रति जो उसका विश्वास, भरोसा, आशा-आश्रय है वह उसकी मनोरथ-सिद्धिसे भी अधिकतर एवं उत्तमतर सिद्धिका दाता होता है।

ज्यों-ज्यों उसकी प्रार्थनाकी सुनवाई प्रभु-दरबारमें होती है, त्यों-त्यों परमात्माके प्रति उसका प्रेम, विश्वास, श्रद्धा एवं निष्ठा बढ़ती जाती है। उससे कालोपरान्त वह प्रभुकी 'तदात्म्यता' प्राप्त करता और फिर तो 'धन्योस्मि, कृतार्थोस्मि' समझने लगता है।

जिनकी प्रार्थना प्रभु-दरबारमें जल्द न सुनी जाय, उन्हें निराश न होना चाहिए। भगवानके स्वभावके सम्बन्धमें महात्माओंका यह अनुभव है कि भगवानका स्वभाव 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' न्यायोक्तिके अनुसार है। भगवान सनातन उदार हैं। मूढ़ कामान्ध स्वार्थी प्राणी जिन-जिन कामनाओंकी पूर्त्तिकी मांग करता है, भगवान उन सबकी पूर्त्ति नहीं करता, इसका कारण यह है कि वह उस प्राणीके ऊपर अपनी कठोर कृपा दिखलाता है। जिन कामनाओंकी पूर्तिसे उस प्राणीका महान अनिष्ट-साधन हो सकता है; भला भगवान उन सबोंकी पूर्तिकर उसपर विश्वास करनेवाले उस प्राणीका अनिष्ट क्योंकर होने दे सकते हैं। अबोध बालक यदि मूर्खतावश अपने माता-पितासे रो-गिड़-गिड़ाकर भी अवांछित पदार्थकी याचना करे तो क्या कभी भी उसके माता-पिता उसकी इच्छा-पूर्त्ति करेंगे ? फिर करुणा सागर उदार परमपिता परमात्मा अपने ऊपर प्रेम-विश्वास करनेवाले प्राणी अज्ञानी भक्तको याचित अवांछित कामनाओं की पूर्त्ति क्योंकर

कर सकते हैं ? मोहवश क्या-क्या मांग दुर्बल मनुष्य परमात्मासे नहीं करता। स्वयं ऐसा करते लज्जित नहीं होता, उल्टे भगवानको दोष देता है, उनकी उदारता, दयालुता, कोमलता और महानतामें सन्देह कर बैठता है। नारदजीने मोहवश हो 'सौन्दर्य्य' की भिक्षा भगवानसे मांगी थी। यदि कहीं भगवान उसकी पूर्ति कर देते तो ब्रह्मर्षि नारद तो गारत हो जाते! भगवानकी कठोर (नहीं, कोमलतम) कृपाका मोह-मुग्ध नारदको क्या पता! अपनी तपस्याके अभिमानमें स्वयं भगवानको श्राप दे डाला!

सारांश यह कि प्रार्थना अस्वीकृत होनेपर भी पूर्ववत् श्रद्धापूर्वक प्रार्थना करते जाना प्रेमीको अपना परम धर्म समझना चाहिए।

सांसारिक पुरुष सांसारिक सुख-भोग-सिद्धियोंके लिए प्रार्थना करते हैं और पारमार्थिक प्रवृत्तिवाले पारमार्थिक सिद्धियोंके लिए। भगवान समभावसे सबकी कामनायें पूरी करते हैं। सांसारिक पुरुष प्रार्थना द्वारा सांसारिक सिद्धि लाभ करते हैं, किन्तु जो लोग निस्स्वार्थ भावसे आत्मकल्याण या संसारके मङ्गलकी कामना करते हैं, उन्हें क्या मिलता है? भगवानने स्वयं कहा है—'उन्हें मैं मिलता हूं।' भला उनसे अधिक धन्य कौन है जो प्रभुको ही पा जाते हैं। इसलिए ही निस्स्वार्थ-भावसे भगवानकी प्रार्थना करनी चाहिए। भला ऐसा कौन मूढ़ होगा जो सर्व-मङ्गल-रिद्धि-सिद्धि-दाता जगन्नाथको

निस्स्वार्थ-प्रेम-प्रार्थना-द्वारा पानेकी प्रार्थना न कर क्षणिक सुखद् सांसारिक सिद्धिके लिए प्रार्थना करेगा ? बहुतसे लोलुप लोग परमात्माके समक्ष लम्बी-चौड़ी आशासे, अपने स्वार्थोंका लम्बा चिट्ठा पेशकर उनकी पूर्त्ति द्वारा भगवानकी परीक्षा लेने एवं उनके साथ भी सट्टा-फाटका खेलनेकी चतुराई करते हैं। अपनी उँगलियोंपर विश्वको नचानेवाला चतुर नट यदि उन्हें भी चिरकालतक खेलाता रहे तो इसमें उसका क्या दोष ! यद्यपि वह तो कभी ऐसा नहीं करता, किन्तु वह प्राणी तो प्रकृति-वश चिरकालतक भ्रमा-भटका करता है। 'जैसी करनी वैसी भरनी' वाली कहावत तो जगत्प्रसिद्ध है। इसलिए प्रार्थना वैश्य-बुद्धिसे न करनी चाहिए।

जिस प्रकार मित्र अपने मित्रसे निश्छल-निर्भेद हो अपना गुप्त-गुह्य भेद भी बतला देता है, सेवक अपने सुख-दुःखको अपने स्वामीके सामने सकरुण विनम्र शब्दोंमें सुनाता है, पत्नी अपने पतिके समक्ष लज्जा—पर्दा न रख अपने मनोभाव प्रकट करती है, बच्चा रो-गाकर अपने माता-पिताको अपनी पुकार सुनाता है, कमल अपने शत दलरूपी हृदयको सूर्य्यके सामने पूर्णरूपसे खोल देता है, उसी प्रकार नित्य नियमपूर्वक प्रातः-शाम अपने हृद्गत् भाव-कुभाव, दुःख-सुख आदिको शुद्ध एवं सम्पूर्णभावसे भगवानके सामने रखना चाहिए। इससे आत्म-शुद्धि होती है।

आत्मशुद्धि।

———:०:———

कलहंस, हंस सुहंस रंग रहे, कभी न कुरंग हो।
अन्तःकरणमें नित्य बहती धवल-गंग तरंग हो॥

नव जन्म मोह-मायाके बन्धनोंको तोड़ त्रिगुणातीत हो 'निस्त्रैगुण्य' भगवानकी प्राप्तिके लिए है, भगवानके श्रीचरणोंमें अपनेको शुद्ध-बुद्ध बना समर्पण करनेके लिए है। अपनेको षट्विकारादि दोषोंसे मुक्तकर पूर्ण पवित्र बनानेकी चेष्टा धैर्य्य-ध्यान पूर्वक करते हुए पूर्ण पवित्रता लाभ करनेपर पूर्ण शुद्ध-विशुद्ध भगवानके श्रीचरणोंमें समर्पित कर प्रेमी-भक्त अपनेको परमानन्दित समझता है। अशुद्ध वस्तु भगवानके चरणोंमें समर्पण करते किसे लज्जा नहीं आयेगी?

यह संसार विकारोंका क्रीड़ा-क्षेत्र है। यहां अशुद्धियोंका ग्रहण करना जितना सरल है, शुद्धियोंका ग्रहण उतनाही कठिन। अतः बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है। आंख सदा खुली रहनी चाहिए, अन्यथा तनिक असावधान होते ही अशुद्धियोंका आक्रमण बड़े वेगसे हो जायगा, जिनका प्रतिकार बहुत कठिन होगा। इन्द्रियोंको जहां एक बार विषय-सुख-भोगने घर दबाया, कि फिर वे उनको ग्रहण करनेके लिए सुरसाकी तरह मुंह फैलाये उनकी प्रतीक्षा करती हैं। जिस प्रकार फुटबालको एक-

वार लात मारनेसे वह दश वार उछलता है, उसी प्रकार एक वार विषय-सुख-भोगका सरस रसास्वादन कर लेनेपर फिर वे सतृष्ण हो उसके पीछे दौड़ती हैं और उन्हें रोकना महा कठिन हो जाता है। फिर तो जिन इन्द्रिय-द्वारों द्वारा शुचिताशान्तिकी गङ्गधार प्रविष्टकर परमानन्द—ब्रह्मानन्दका अनुभव करना सम्भव था, उन्हीं द्वारा अशुद्धि—भाण्डार ग्रहणकर मनुष्य अपने जीवनको पतित एवं नारकीय बना देता है। अतः यथासाध्य अशुद्धियोंको भीतर आने न देना चाहिए।

यह शरीर आत्मशुद्धिके लिए है। इन्द्रिय-द्वारों द्वारा ही नाना प्रकारके विकार प्रविष्ट होते हैं, अतः पूर्ण संयम-द्वारा इन्द्रिय-निग्रहकर इन्द्रिय-द्वारोंसे विकारोंको भीतर न घुसने देना एवं ध्यान-गानद्वारा भीतर प्रविष्ट विकारोंको बाहर निकाल फेंकनेसेही शुद्धि आ सकती है। जिस प्रकार दवातमें गन्दी स्याही रहनेपर उसमें शुभ्र स्याही भी डालें तो गन्दी ही हो जायगी, उसी प्रकार अशुद्धियोंको बाहर करनेका प्रयत्न किये विना शुद्धि-ग्रहण सम्भव नहीं।

इन्द्रियोंका मालिक मन है। मनोशुद्धि द्वारा इन्द्रिय-शुद्धि अपने-आप हो जाती है। जो अशुद्धियां पहलेसे प्रविष्ट हैं, उन्हें कुछ तो प्रकृति अपने आप निकाल फेंकती है और कुछको प्रेमी-साधक साधना-द्वारा निकाल फेंकता है। ज्वर-जूड़ी, फोड़ा-फुंसी आदि प्रविष्ट विकारोंका बाहर निकलना ही तो है। अनेक प्रेमी प्रभु (गुरु)-गुण गा अपने आंसुओंकी धारमें पूर्ण

संचित विकार बहा देते हैं। इसकी चर्चा 'आत्म-निवेदन' शीर्षकमें की गयी है।

शुद्धप्रेम-भक्तिकी तरङ्गोंसे मानस-मन्दिर धीरे धीरे-पवित्र एवं शुद्ध होता जाता है। ज्यों-ज्यों यह शुद्ध होता जाता है त्यों-त्यों 'शुद्ध बुद्ध' भगवानके निकट चलता जाता है। पूर्ण शुद्धि प्राप्त होते ही प्रेमी परमात्मामें लीन हो जाता है।

संसार विकारोंका क्रीड़ाक्षेत्र है। पग-पग प्रेमी अपनी दुर्बलताओंका अनुभव करता है। वह समझता है कि मैं अशुद्ध वायुमण्डलमें विषपान कर रहा हूं, उस वायुमण्डलसे पिण्ड भी छुड़ाना चाहता है, किन्तु पूर्वार्जित संस्कार उसको धर दबाते हैं और गन्दगी भीतर चली ही जाती है। ऐसे समय उसे घबड़ाना उचित नहीं, किन्तु सतत सचेष्ट हो ऐसे वायुमण्डलसे पृथक् रहना ही उत्तम उपाय है। जहां भी जिन लोगोंके साथ उठे-बैठें, चले-फिरे, यदि उसके मन-मस्तिष्कपर बुरा प्रभाव पड़े तो वहांसे उन लोगोंसे विदा मांग झट हट जाना चाहिए।

शुद्धि-प्राप्तिके लिए निजका शुद्ध वायुमण्डल बनाना आवश्यक है। 'वायुमण्डल'से हमारा तात्पर्य्य यह है कि जहाँ रहें वह स्थान शुद्ध हो किसी नदीके किनारे ग्राम या शहरके बाहर बने खुले मकानमें ठहरना हो, वायु शुद्ध हो, फूल-पत्तोंके गमले हों, एकान्त हो, वहांके या वहाँके आसपासके रहनेवाले सात्विक विचारके हों, जिनके संसर्गसे या दर्शन-मात्रसे ही मनपर अच्छा प्रभाव-पड़े, रहनेवाले कमरेमें महात्माओंके सुन्दर शिक्षाप्रद

चित्र लटके हों, जिनके देखनेसे उनके चरित एवं चरित्रका स्मरणकर मानसिक पवित्रता-लाभ हो, एवं चुनी-चुनायी उत्तमोत्तम कोटिकी पुस्तकोंका संग्रह हो।

भीड़, तमाशे मेले या स्टेशनमें जाना अपनेको अशुद्ध वायुमण्डलमें डालना है। शुद्ध वायुमण्डलमें संयम-पूर्वक जो आत्मशुद्धि प्राप्त की जाय उसकी रक्षा यत्नपूर्वक की जानी चाहिए। बहुतसे लोग कमाई थोड़ी करते और खर्चा अधिक कर देते हैं और नाना प्रकारके कष्ट उठाते हैं। तपस्या एवं संयम द्वारा वर्षोंमें जो आत्मशुद्धि प्राप्त की गयी हो वह अशुद्ध वायुमण्डलमें बहुत जल्द विनष्ट हो सकती है। अतः सदा शुद्ध वायुमण्डलमें रहनेकी चेष्टा करनी चाहिए। इस प्रकारके अभ्यास द्वारा आत्मशुद्धिकी चेष्टा करनी चाहिए। इससे आत्म-गौरव भी बढ़ता है।

आत्म-गौरव

—:*:—

जिसको न निज गौरव तथा
निज देशका अभिमान है।
वह नर नहीं नर-पशु निरा है,
और मृतक समान है॥
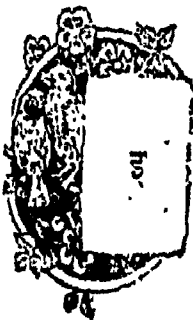
इस संसारमें जन्म लेकर कौन मरता नहीं? अतः यहां आकर आत्मोन्नति, धर्मोन्नति और देशोन्नतिके कार्य्य करते हुए स्थायी गौरव स्थापित कर अमर कीर्त्ति कमाना चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य प्रकृति-गत दुर्बलता या प्रौढ़ताके अनुसार अपना-अपना संस्कार लेकर कार्य्य करता है। कोई अहर्निश सत्कर्ममें तल्लीन रहता या रहना चाहता है तो कोई नाना प्रकारके दुष्ट-कार्य्योंके सम्पादनमें ही अपना अधिकांश समय बिताता है और उसीमें अपनेको सुखी मानता है। कोई सुख-विलासमें रह अपना दिन आनन्दसे काट लेनेकी चेष्टा करते और पशु-जीवनसेही सन्तुष्ट रह जाते हैं। उनकी मृत्युके बाद उनका कोई नाम लेनेवाला भी नहीं रहता। कोई वीरोंके

संकटाकीर्ण-कंटकाकीर्ण मार्गपर चल अपने तपोबलसे आत्मो-द्धारके साथ-साथ जगदुद्धारके लिए मरने-खपते रहते हैं और अपनी अमर कीर्त्ति स्थापित कर जाते हैं, और अपने पदचिह्न अपनी सन्तानके लिए छोड़ जाते हैं, जिसपर चलकर अनेक जन अपनेको धन्य समझते हैं। कहनेका तात्पर्य्य यह कि दैवी या आसुरी सम्पदा लेकर मनुष्य यहाँ आता है। इसीसे देवासुर-संग्राम बराबर चलता रहता है। देवासुर-संग्रामकी कथा आप लोगोंने सुनी ही होगी। आसुरी शक्तिपर अधिकार-आधिपत्य जमा दैवी शक्तिको प्रस्थापित-प्रतिष्ठित करना प्रत्येकका धर्म है। किन्तु यह काम गौरवशील पुरुष ही कर सकते हैं। जिनमें आत्मगौरव नहीं वे कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विचार किये बिना ही सुगम मार्ग चुन लेते हैं। अतः विद्यार्थियोंको गौरवशील होना चाहिए। ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए, जिससे आत्म-गौरव नष्ट हो, लोकनिन्दा हो, और प्रभा-प्रतिभाहीन हो इस अन्धकारमय जगतमें भटकना पड़े।

कहा है, 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि।' अतः गौरवपूर्ण कार्य्य करनेमें यह समझ लेना चाहिए कि कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा; क्योंकि गौरवपूर्ण कार्य्य कष्ट-साध्य होते हैं। चरित्रवान व्यक्ति ही तप कर सकते हैं। अतः कष्ट-सहिष्णु होना विद्यार्थियोंका परम कर्त्तव्य है। विद्यार्थियोंके मनमें यह साहस होना चाहिए कि हम सब विघ्न-बाधाओंको हटा देंगे और गौरवपूर्ण कार्य्य करेंगे।

मृत्यु-भय सब भयोंमें भयावह है। इसको जीत लेनेवाला ही अमर है। गौरवशाली पुरुष अपने कर्त्तव्य-पालनके लिये अपने प्राणोंकी बाजी लगा देते हैं। वे समझते हैं कि एक दिन तो सबको ही मरना है, 'आत्माके अमरत्व और शरीरकी नश्वरता' के सिद्धान्तको वे मानते हैं। चिर कालतक निष्प्रभ जीवन बिता करअन्त में कुत्तों-बिल्लियोंकी मौत मरना उन्हें पसन्द नहीं। अल्प जीवन-कालमें महान कर्म्म कर अपने आलोकसे जगत्को आलोकित करना चाहते हैं। उनका सिद्धा-न्त रहता है:—

'मुहूर्त्तं ज्वलितं श्रेयं न च धूमायितं चिरं।

महापुरुषोंकी परम निधि गौरव-गरिमा ही है, जिसे कोई न छीन सकता, न नष्ट ही कर सकता है। इसी निधिकी रक्षाके लिये मर्य्यादा-पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रजीने अपनी प्राणप्यारी सीताको निर्वासित कर दिया था। इसलिये प्यारे विद्यार्थियो, गौरवशील बनो और अपने गौरव द्वारा अपने माता-पिता, देश और विश्वको गौरवशाली बनाओ।

प्रेमही परमात्मा है।

——:0:——

पढ़ते-पढ़ते जग मुआ, पण्डित हुआ न कोय।
एकै अक्षर प्रेमका, पढ़ै सो पण्डित होय॥

पने माता-पिता, देश और विश्वको गौरवशाली बनानेके लिए मातृ-पितृ-प्रेम, देश-प्रेम और विश्व-प्रेमकी नितान्त आवश्यकता है। इन विषयोंपर प्रकाश डालनेके पूर्व अपने पाठकोंको यह बतला देना आवश्यक है कि प्रेम क्या है और प्रेमका मूल्य क्या है।

बहुतसे लोग लड़कोंको उभाड़कर उन्हें उनकी योग्यताके बाहर कार्य्य कराना चाहते हैं और लड़कोंकी इससे बड़ी हानि होती है। लड़के भावुकताकी प्रेमधारमें बह तो जाते हैं, किन्तु उसके परिणामको भोगते-समय अत्यधिक व्यथित होते देखे जाते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें उस प्रेमधारमें बहनेके पूर्व उस प्रेमकी कीमत (यानी उसके परिणाम) का पता नहीं होता।

सुननेमें 'प्रेम' शब्द जितना सरल और सीधा प्रतीत है, उतनाही इसका मार्ग जटिल और तलवारकी धारपर चलनेके समान ही कठिन है। छोटी-छोटी सांसारिक कामनाओंकी पूर्त्तिमें भी अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। उद्देश

जिस अंशमें साधकके हृदयमें उद्दिष्ट वस्तुके प्रति प्रेम है। यहां यह शंका हो सकती है कि प्रेम रहते भी बल, साहस, उत्साह और कार्य-कुशलता आदि गुण-साधनोंका होना भी 'प्रेम' के साथ-ही-साथ अत्यावश्यक है। किन्तु उक्त गुण-साधन 'प्रेम' के पीछे अपने आप दौड़नेवाले हैं। 'प्रेम' वह इञ्जिन है, जिसमें सृष्टि-चक्रको परमात्माकी ओर खींच ले जानेका अपरिमेय बल है। सिंहवत् साहस, अदम्य उत्साह और अभ्रान्त ज्ञान आदि अन्य सद्गुण एवं साधन आदि शाखायें प्रेम-तरुमेंसे अपने-आप प्रस्फुटित होती हैं।

लड़का खिलौनेके प्रति प्रेम करता है, खिलौनेके लिए रोता है और उसके मां-बाप उसे खिलौने देते हैं। खिलौना-प्राप्ति ही उसको सिद्धि है और 'प्रेम' की तरंगका आंसुओं द्वारा प्रकट करना उसकी साधना है।

नाना कामनाओंका जागृत होना, उनमेंसे कुछको मनका अस्वीकृत करना और कुछके ऊपर स्वीकृतिकी छाप लगाकर उनकी प्राप्तिमें लग जाना यह बतलाता है कि प्रेमका भी संस्कार होता है।

भिन्न-भिन्न प्राणी भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें प्रेम करते हैं। यहां-तक देखा जाता है कि कोई अमृतसे प्रेम करते हैं, तो कोई विषसे। किस चीजमें प्रेम करना, किसमें नहीं करना—इसका निश्चय-निर्णय कठिन है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि आसुरी या दैवी, लौकिक या पारलौकिक—जिस प्रकारकी भी अभिष्टि हो, 'प्रेम'-रूपी साधन वैसी ही सिद्धि देगा।

मनुष्य-जातिके सर्वोच्च महात्माओंने अपने उच्चतम आदर्शको 'परमात्मा' के रूपमें देखा है। अतः यदि कोई अलौकिक सर्वोच्च सिद्धि हो सकती है तो वह परमात्माकी प्राप्ति है। यही कारण है कि परमात्माकी प्राप्ति कठिनतम एवं दुरूह कार्य माना गया है। महात्मा तुलसीदासजीने यहांतक लिखा है, 'जन्म-जन्म मुनि यतन कराही, अन्त राम पहँ आवत नाहीं।' अतः यह सर्वोच्च, कठिनतम और अनिवार्यरूपमें अत्यन्तावश्यकीय कार्य परमात्माकी प्राप्ति ही मान लिया जाय तो इस सिद्धिके लिए जिस प्रेम-साधनका अवलम्बन लेना होगा वही प्रेम आदर्श एवं सर्वोच्च होगा और सचमुच ही उस प्रेमका मार्ग भी प्रशस्त नहीं, बल्कि कण्टकाकीर्ण होगा।

सत्यज्ञान और प्रेम प्राकृतरूपमें अभिन्न हैं। सत्य और ज्ञानरूपही परमात्मा हैं और परमात्माही सत्य और ज्ञानरूप। यदि यह ठीक है, और ठीक है ही, क्योंकि भगवानने भी गीतामें कहा है:—'भूतानामस्मि चेतना', 'ज्ञानं ज्ञानवतामहम्', रसोऽहमप्सु,' 'प्रभास्मि,' तेजश्चास्मि' आदि, तो सत्य, ज्ञान या परमात्मा यदि साधकके लिए साध्य या सिद्धि है तो प्रेम साधन स्वरूप है।

साधकोंको आरम्भमें तो साध्य, सिद्धि और साधनमें अन्तर प्रतीत होता है, किन्तु साध्य या सिद्धि प्राप्तिके पश्चात् साध्य, सिद्धि और साधनमें साधकको अभिन्नताके स्थानमें पूर्ण सामञ्जस्य एवं समन्वय दीख पड़ता है और तीनोंमें वस्तुतः

अन्तर रह ही नहीं जाता। साधकका आरम्भ साधना है, और अन्त सिद्धि है। अतः प्रेम और परमात्मामें अन्तर नहीं है।

प्रेम और त्याग।

बस आज करूंगा दान।
कौन जानता जीवन-कलिका कल हो जाये म्लान।
मुकुलित मानस मुकुल सही निर्गन्ध, नहीं अवदान।
जो कुछ है, है किया तुम्हारे चरणोंपर बलिदान॥
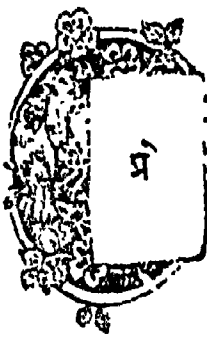
प्रेम सदा आहुति चाहता है। आहुति भी साधारण नहीं, विशेष! प्रेमरूपी अग्निकी ज्वाला प्रज्वलित रखनेके लिये सद दिव्य और सर्वप्रिय द्रव्य-हवनका होम करना पड़ता है। प्रेम-निर्वाह बिना त्यागके हो नहीं सकता और त्यागी ही प्रेमी कहला सकता है। जिसमें त्याग नहीं वह प्रेम का अधिकारी नहीं।

तुच्छ सांसारिक प्रेम भी त्याग चाहता है। विशुद्ध प्रेम तो विशुद्ध त्याग चाहता है। आदर्श प्रेम आदर्श त्याग चाहता है। सत्य-असत्य, अन्धकार-प्रकाश, दिन-रात, आचार-व्यभि-

चार, ज्ञान-अज्ञान आदि दो विरोधी वस्तुएं सम-मात्रामें एक स्थानमें रह नहीं सकतीं। आंशिक सत्यमें आंशिक असत्य रह सकता है; किन्तु पूर्ण सत्यमें असत्यका सम्मिश्रण कैसे हो सकता है? इसी प्रकार आंशिक ज्ञानमें अज्ञान और आंशिक अज्ञानमें ज्ञानका न्यूनाधिक मात्रामें रहना तो हो सकता है, किन्तु पूर्ण ज्ञान (परमात्मा) में अज्ञानका रहना कैसे हो सकता है।

हम सांसारिक पुरुष अपनेको पूर्ण प्रेमी नहीं कह सकते। पूर्ण प्रेमी तो विरले होते हैं। हमलोगोंका प्रेम तो इतना सस्ता एवं व्यापक होता है कि कौड़ी मूल्य पाये विना स्वेच्छा-पूर्वक जहां-तहां लुटाते हमलोग कुंठित नहीं होते। यदि प्रेम-सिक्केका मूल्य सोलह आने है, तो हमलोगोंमेंसे अधिकांश लोग दो आने पुत्रमें, चार आने स्त्रीमें, दो आने रुपये-पैसेमें, दो आने मित्रोंमें, दो आने जिह्वादि इन्द्रियोंके रसमय भोजनमें, और न जाने ऐसे हो कितने स्थानों, पदार्थों एवं पुरुषोंमें कुवेरके भाण्डार जैसे प्रेम-भाण्डारके अक्षय-अक्षुण्ण समझ बलिसे अधिक उदार दाता अपनेको समझते बांट देते हैं और उनमें जो थोड़े भाग्यशाली पुरुष होते हैं वे उसमेंसे कुछ आने परमात्माके नाम पर भी खर्च करते हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि प्रेम-बीज इतना सस्ता नहीं जो जहां हो वहीं बोया जाय।

प्रेमको पवित्र रखना चाहिए और इसे पवित्र रखनेके लिए अव्यभिचारिणी, शुद्ध एवं सात्विक बुद्धि-प्रेरणाकी आवश्यकता

जितना भी ऊँचा हो, उसकी सिद्धि उसी अंशमें सम्भावित है, है। ऐकान्तिक प्रेमही पूर्ण कहा जा सकता है, और पूर्ण प्रेमही पूर्ण सिद्धिका दाता है। यत्र—तत्र बिखरे हुए प्रेमको ऐकान्तिक और एकनिष्ठ बनाना परमावश्यक है। सर्वत्र विश्वके प्राणिमात्रमें समभावसे प्रेम करनेका अभ्यास करनेसे प्रेम-विरोधका अभाव हो जाता है। विश्वकर्त्ता विश्वके निर्जीव-सजीव पदार्थों एवं प्राणियोंमें सर्वत्र समभावसे विद्यमान है। अतः समभावसे प्रेम-बंटवारा करनेसे वासुदेव भगवान (विराट) की पूजा हो जाती है। सब ओरसे प्रेम खींच कर प्रभुके चरणारविन्दमें समर्पित करना ही उत्तम है।

प्रेमीको 'प्रिय' के प्रति प्रेम-भाव जागृत होते ही त्यागकी आवश्यकताका अनुभव होने लगता है। 'प्रेम' के आरम्भके साथ ही 'त्याग' का आरम्भ हो जाता है। जिस अंशमें त्यागकी मात्रा प्रेमीमें 'प्रिय' के नामपर होगी उसी अंशमें 'प्रिय' का प्यार-प्रेम रूप सिद्धि 'प्रेमी' को प्राप्त होगी। पूर्ण त्यागमें ही पूर्ण सिद्धि है।

मान लीजिए कि कोई मनुष्य अपने रुग्ण पिताकी सेवा करना चाहता है। सेवा-कार्य्य द्वारा ही वह 'पितृ-प्रेम' का परिचय देना चाहता है। ज्योंही वह सेवा-कार्य्य (प्रेम-प्रदर्शन) आरम्भ करेगा अपने वैयक्तिक सुखोंका त्याग करना पड़ेगा। यदि रात्रिमें दवा-दारू देना पड़े, या सेवा-सुश्रूषा करनी पड़े तो निद्राका त्याग करना ही पड़ेगा। यदि भोजन करनेके समय ही

दवा खिलानी होगी तो कुछ कालके लिए भोजनका त्याग करना पड़ेगा। ऐसा समय भी उपस्थित हो सकता है कि बिल्कुल ही दो-तीन दिन या शाम भोजन करनेका अवसर ही न मिल सके। यदि वह मनुष्य अपने दैहिक सुख-मोहमें पड़कर पितृ-सेवासे हट गया तो 'पितृ-सेवा' के कर्त्तव्य-पालनरूपी सिद्धिसे दूर हट गया।

यही कारण है कि भगवद्-प्रेमी भक्तोंकी सिद्धि-लाभार्थ अपना नेह-गेह, मोह-माया, धन-जन, पुत्र-कलत्र—सर्वस्व ही परमात्माके श्रीचरणोंमें अर्पण करना पड़ा। और सच तो यह है कि सबका अनुभव एक ही रहा। सब एक बार घबड़ा गये। सबके मुँहसे एक बार उफ निकली। जो उस त्याग.पीड़ाको सहन कर सके उन्हें आनन्द, परमानन्द, सुख-शांति एवं रिद्धि-सिद्धि प्राप्त हुईं, जो पूर्ण त्याग न कर सके उन्हें आंशिक शान्ति-सिद्धि ही मिली। जो इस प्रेमके धधकते ज्वालामुखीके मुखमें परमात्माके नामपर कूद पड़े, जिन्होंने तिल-तिल करके अपने मान-अभिमान, तन-प्राण, भोग-विलास आदि सांसारिक गौरव-गरिमा-प्रदायिनी रिद्धियों-सिद्धियोंको उसमें झोंक दिया, जो प्रेम-त्यागकी गर्मी सहन करनेमें समर्थ सिद्ध हुए, सचमुच उन्हीं बहादुरोंको सच्चा सुख (परमानन्द), चिर शान्ति, स्थायी सिद्धि प्राप्त हुई, अन्यथा जो कायर—कुपूत पीछे रह गये, प्रेमके मार्गमें आगे न बढ़ सके, वे उस ज्वाला-मुखीकी लपटोंमें अनन्त कालतक दग्ध-विदग्ध होते रहेंगे,

उनके प्राणोंको कभी शान्ति-लाभ नहीं हो सकता, इन्द्रियोंके सुख-भोगोंरूपी नरकसे उनका उद्धार सम्भव नहीं, सदा शान्ति-सुखके लिए लालायित एवं तर्षित हो दर-दर भटकते और पग-पग ठोकरें खाते रहेंगे। साहसपूर्वक जो उस प्रेमाग्निमें केवल प्रेमीके नामपर सात्विक एवं निस्स्वार्थ-भावसे कूदनेको कटिबद्ध हो जाता है, उसकी रक्षाके लिए चारों हाथ पसारे दयालु परमात्मा पहलेसे ही प्रतीक्षा करते रहते हैं। कूदतेही अग्निकी धधकती लाल-लाल ज्वालायें चन्दनकी तरह शीतल-सुखद हो जाती हैं और अग्नि-देवकी गोदमें न जाकर वह परमात्माकी शीतल-सुखद-शान्तिदायिनी गोदमें जा बैठता है, जहां वह अमर स्थान प्राप्त करता है।

इसके प्रमाणोंका अभाव नहीं। हिन्दूधर्म्म-ग्रन्थ ऐसे प्रमाणोंसे भरे पड़े हैं। उदाहरणार्थ सीताकी अग्नि-परीक्षाको ही लीजिये। यहां अब यह कहनेकी विशेष आवश्यकता न रही कि यह अग्नि-परीक्षा प्रेम-परीक्षाही थी, सीताके पातिव्रत (पतिके प्रति एकनिष्ठ प्रेम) की परीक्षा थी। विशाल अग्नि-कुण्ड प्रज्वलित किया गया। लपलपाती लौएं प्रलयाग्निका स्मरण दिलाने लगीं। लाल-लाल ज्वालायें मानों सीताको अग्नि-परीक्षासे बचानेके लिए लज्जित हो सवेग शून्य (आकाश) में मानवीय-दृष्टिसे ऊंचे भाग जाना चाहती थीं। सुरसाके मुखकी तरह प्रतिक्षण बढ़ती हुई फुंकारती हुई क्रोध-मग्ना सर्पिणीरूपी लपटोंमें अनेक कोमलचित्त महानुभावोंके समक्ष अबला सीता

करबद्ध खड़ी हुई। यह देख लक्ष्मण, हनुमान, विभीषणादि तो व्याकुल हो ही गए, नर-रूपमें नारायण भगवान रामचन्द्र भी विचलित हुए बिना न रह सके। विशाल नर-समुदायके बीच वही प्रेमकी पुतली सीता अविचलित धीर-गम्भीर मुद्रामें खड़ी थीं। उन्हें अपने अखण्ड पातिव्रत, आत्मचरित्र एवं आत्मबल पर पूर्ण भरोसा था। राजा जनकके घर लालित-पालित राज-नन्दिनी, अयोध्याधिपति नृपेन्द्र राजा दशरथकी राजवधू, भावी राजमहिषी सीताने जिस पति-प्रेमके नामपर राक्षसों एवं व्याघ्रादि वनैले पशुओंसे परिपूर्ण, कण्टकाकीर्ण वनमें; विविध आभूषणों एवं ऐहिक सुखोंको लात मारकर रहना स्वीकार किया, रावण द्वारा हरी जानेपर भी निस्सहायावस्थामें उसकी तलवारकी तीक्ष्ण धारके नीचे अपनी कोमल गर्दन नपानेपर तुल गयीं; जो पहले ही उक्त विकट परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हो चुकी थीं वह भला इस अग्नि-परीक्षासे क्योंकर डरतीं? अग्निमें हँसते-मुसकुराते कूदनेको तैयार हो, बोल उठीं:—

मनसि-वचसि-काये जागरे-स्वप्न-संगे
यदि मम पतिभावो राघवादन्य पुंसिः
तदिह दह ममाङ्गं पावनं पावकेदं
सुकृत-दुरित भाजां त्वंहि धर्मैक साक्षी ॥

फिर अग्नि-कुण्डमें कूद ही तो पड़ीं। किन्तु निर्विकार, निर्दोष, निष्पाप, सती-साध्वी सीता प्रेम-बलसे तप्तकाञ्चनवर्णा हो

निकल आयीं। आज उसी प्रेमने तो उन्हें सती-शिरोमणि, जगी-जननी, प्रातःस्मरणीया, जगत्तारिणी, त्रयतापहारिणी एवं दर्शनीया बना दिया।

इसीसे मिलती-जुलती दूसरी घटना प्रह्लादके साथ घटित हुई। उनके लिए भी अग्नि शीतल हो गयी। वे भी प्रेम-परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। बोल उठे:—

"राम-नाम जपतां कुतो भयं
सर्वतापसमनैक भेषजम्।
पश्य तात, मम गात्र- सन्निधौ
पावकोपि सलिलायते धुना।"

उक्त श्लोकसे यह स्पष्ट ही है कि राम-नामके प्रेमके कारण ही प्रह्लाद आनन्दपूर्वक अग्निकुण्डमें प्रवेशकर आगकी लपकती लपटोंसे खिलौनेके समान खेलते रहे और उनका बाल बाँका न हो सका।

यह तो प्राचीन बातें हैं। कबीर साहेबका अनुभव सुनिये। वे भी तो प्रेमके पुजारी थे। उन्हें भी तो प्रेम-मार्गकी कठिनाइयोंका पूरा-पूरा अनुभव था। अतः अपने भक्तोंको अपना अनुभव निम्न शब्दोंमें कह सुनाया:—

यह तो घर है प्रेमका, खालाका घर नाहिं।
शीश उतारै भुइँ धरै, तब पैठे घर माहिं॥

उनका कहना है कि प्रेम-मन्दिरमें प्रवेश करना सरल नहीं है। इसके अन्तःपुरमें वही प्रवेश कर सकता है, जिसमें उस मन्दिरमें प्रवेश करनेके पूर्व 'प्रेम' का मूल्य चुकानेकी क्षमता हो, और वह मूल्य 'सिर' भी हो सकता है यानी जीवन-दानतक देना पड़ सकता है।

अब प्रेम-पगली मीरा इस सम्बन्धमें क्या कहती है, सुनिये। सांसारिक सुखोंको लात मार, पितृगृह और श्वसुरालयके स्वजनोंके वाक्-वाणोंको सुनकर भी 'कृष्ण'-नाममें उसका इतना अनुराग था कि वह 'कृष्ण' को अपना 'पति' कहती और दिन-रात कृष्ण-कृष्णकी रट लगाया करती थी। इतना त्याग षोड़शी अबला मीराके लिए कम नहीं था। किन्तु इतनेसे उसका काम न सरा। जगतके चराचर प्राणियोंकी कष्ट-संसृतिको नष्ट करनेवाले 'उदार' कृष्ण इतने त्यागसे भी सन्तुष्ट न हो सके। वह पगली अब क्या करती! कहां जाती! कौन पूछनेवाला था! किन्तु निराश न हुई। प्रेम-मार्गपर पग-पग ठोकरें खाती, नानाविध वेदनायें सहती बढ़ती जाती। थक जाती, मार्गका अन्त न पाती, झल्लाती-झुँझलाती, रोती-कलपती, घबड़ाती तो कह उठतीः—

भाई छोड़ा बन्धु छोड़ा, छोड़ा सगा सोई।
सन्तन ढिग बैठि-बैठि लोक-लाज खोई॥

फिर आगे बढ़ती। बढ़ते-बढ़ते यह अनुभव किया कि अब

तो 'पति-गृह' समीप है, 'कृष्ण-मिलन' सम्भव है; किन्तु अब तो बचा-खुचा जीवन-सर्वस्व प्रेम-वेदीपर बिना चढ़ाये आगे बढ़कर अन्तिम झांकी मिलनी असम्भव है। आगे न बढ़कर ठिठकी, बोल उठीः—

'सूली ऊपर सेज पियाकी केहि विधि मिलना होय।

फिर अन्तिम ऐंड लगायी, साहसपूर्वक 'जीवन-बलिदानकी ठानी, प्राणोंका मोह त्याग प्राणाहुति दे ही दी, कूद पड़ी सूलीपर! फिर तो क्या कहना, आज प्रेम-कसौटीपर कसी मीरा प्रातः-स्मरणीया हो गयी और प्रेम-रसमें सने उसके भजन आज नीरस प्राणोंमें भी सरसताका सञ्चार करते हैं।

अब जरा बुड्ढे बाबा मलिक मुहम्मद जायसीका तत्सम्बन्धी अनुभव सुनिये। इस बेचारेने पतङ्गकी तरह प्रेम-निर्वाह करनेकी पहलेसे ही सोच ली। बड़े लालबुझक्कड़ थे। जानते ही थे कि 'जीवन-दान' से कम दान लेकर सन्तुष्ट होनेवाला वह प्रेम-भिखारी नहीं है। फिर कौन सोचे-विचारे? और भला सोचने-विचारनेसे होगा भी क्या? बस, खम ठोंक, झट अन्धे पतङ्गकी तरह ज्ञान-राशि-दीपक (परमात्मा) की उद्दीप्त दीप्ति-शिखापर हाथ-पैर (इन्द्रियों) रूपी पङ्खको पटक पटक, तड़प-तड़प तथा जला डालनेको तैयार हो गये। भक्तोंके लिये अपना अनुभव छोड़ गयेः—

दीपक प्रीति पतङ्ग ज्यों, जन्म निबाह करेउँ।
न्योछावर चहुं पास है; कण्ठ लाग जिय देउँ॥

अब जरा अन्धे सूरको सुनिये। आंखें तो थीं नहीं, फिर भी उन्हें जयन्तकी तरह कितनी दूरकी सूझी। बोलते हैं:—

'जो कोउ कोटि करै कैसेहू, विधि-विद्या-व्यवसाउ।
तो सुन 'सूर' मीनको जल बिन नाहिंन और उपाउ॥'

इस कथनसे स्पष्ट है कि इन्हें बड़ी प्यास (प्रेम-पिपासा) थी। मालूम होता है कि इन्हें जल ही नहीं मिलता था, या अगस्तकी तरह समुद्र सोखना चाहते थे। इनके लिये मानों जगत्‌के जलाशय सूख गये थे। सूखे नहीं भी हों तो दिखलाई किन आंखोंसे दें? नहीं, ऐसा नहीं, महाशय देखते खूब थे। लोभी थे। क्षीर-सागर सोखना चाहते थे और उसीकी तलाश में मछलीकी तरह तड़प रहे थे। कहते हैं, "नहीं, कुछ नहीं, केवल जल, जल भी क्षीरसागरका ही। वही क्षीरसागर, जहां शेषशायी भगवान लक्ष्मीके साथ निवास करते हैं।" कहिये, भला यह अनुभव एक अन्धेका! त्याग दिया उसने दुनियांका खारा जल, बोला, बस पीऊंगा क्षीर-नीर या प्यासके मारे तड़प-तड़प जान दूंगा, बचावका अन्य उपाय नहीं। अन्तमें पाया, पाया मीठा क्षीर-नीर, बहुत दिनोंका प्यासा था, खूब पीया, जी भर कर पीया, उससे भी नहीं अघाया, गहरी डुबकी लगायी। आनन्दित हुआ। जो चाहा, वही पाया। फिर तो आंखे खुल गयीं, 'सूर' से 'सूर' हो गया।

यह तो हुई सूरकी बात, अब चलिये—देखिये जरा व्रज-बालाओंका त्याग। दुनियांके डाक्टर कहते हैं कि जिसे नींद

न आवे वह रोगी है। 'निद्रा' सुखद होती है और इसे 'देवी' रूपमें दुर्गा-स्तवमें सम्बोधित कर कहा गया है:—

"या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥"

उसी सुखदायिनी निद्राको छोड़ वे प्रेम-भिखारिणी घनी, ब्रजकी सड़कोंपर पथिकोंकी बाट जोहा करती हैं। पति पुत्र, घर-द्वार, सुख-भोग—सब कुछ रहते व्याकुल-प्राणा हो बावलीकी भांति काम-धन्धा एवं लोक-लज्जा छोड़ सड़कोंपर बालक कृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रही हैं। एक पथिक आया, नाम था 'उद्धव'। उसे घेर कर बोल उठीं,

'ऊधो, अँखियाँ अति अनुरागीं।
इक टक मग जोवतिं अरु रोवतिं,
भूलेहु पलक न लागी॥"

वे सब एक टक देखती थीं कि कहीं कृष्ण घर भूल आगे न बढ़ जायं! क्या कृष्ण पागल थे जो इधर आना भूल जाते या ये ही पागल हो रही हैं, और इसी प्रेम-पागलपनमें उनका आत्म-विश्वास बढ़ गया है? उद्धवसे शिफारिश करती हैं, कहती हैं:—

तौ बारक आतुर इन नैननि वह मुख आनि दिखाउ

यदि उद्धवके हाथ यह बात होती तो उनको साथ ही न लिये आते! उद्धव लौट गये और फिर वही प्रेम-भूत उनके

सिर सवार। कोई पथिक इस राह आता, चलने नहीं पाता। चलने पाता कैसे जब ये उन्हें चलने ही नहीं देतीं!

चलन न देत, प्रेम-आतुर उर,कर चरनन लपटात।

यहां देखिये, ये अपने हाथोंको नहीं लपटातीं, इनके हाथ बरबस-बलात इनके काबूसे बाहर निकल पथिकोंके चरणोंमें लपटा जाते हैं। प्रेम-विह्वलता और विभोरताका कैसा अनुपम निदर्शन है! इनका त्याग कितना सराहनीय है! इसीके फल-स्वरूप तो राधिका समेत इन भक्तिनोंके चरणोंसे दलित, कृष्ण-लीला-लसित ब्रजभूमिकी पावन धूलको सिर-आंखों लगा आज भक्तगण अपनेको परम पवित्र एवं धन्य मानते हैं!

ऐसी-ऐसी दिव्य आहुतियां देनेवाले अनेक भक्त हो गये हैं। हिन्दू-धर्मकी विशेषताही 'त्याग' है। जिस धर्मके अनुयायियोंमें 'प्रेम' और प्रेमीके नामपर त्यागका अभाव रहता है वह धर्म चिरकालतक टिकाऊ नहीं रहता। यहां 'परमात्मा' के प्रेमी भक्तोंके प्रेम-त्यागकोही चर्चा की है। 'देश-प्रेम' अथवा भिन्न-भिन्न 'आदर्श-प्रेम' के नामपर 'आदर्श-बलिदान' करनेवाले अनेक त्यागवीरोंके नामोंका उल्लेख सहजही किया जा सकता है। किन्तु भगवद्-प्रेमकोही आदर्श-प्रेम हमने समझा है। इसलिये उक्त उदाहरणोंसे ही अन्य प्रकारके प्रेम और त्यागका अनुमान किया जा सकता है। इसलिए प्रत्येक प्रेमीको त्यागके लिए तैयार रहना चाहिये, अन्यथा प्रेम-सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती।

मातृ-पितृ-प्रेम।

'पिता धर्म्मः पिता कर्म्मः पिताहि परमं तपः'

सी भी बालक-बालिकाके लिये दुनियांमें सबसे अधिक हितैषी मातापिता ही होते हैं। यों तो माता-पिता दोनोंका ही वात्सल्य-प्रेम आदर्श होता है, दोनों ही नाना प्रकारके कष्ट अपनी सन्तानके लिये सहते हैं, फिर भी मातृ-प्रेम आदर्श माना गया है। गर्भ-कालसे ही माता अपनी सन्तानके लिये नाना प्रकारके कष्ट सहन करती है। जबतक सन्तान अबोधावस्थामें रहती है, माता तब तक उसके मल-मूत्रको साफ करती है। उसकी लालसा सदा यही रहती है, कि कब मेरा लड़का बड़ा होगा।

कुछ बड़ा हो जानेपर पिताके ऊपर उसकी शिक्षा-दीक्षा का भार आता है। पिता भी सदा सचेष्ट रह अपनी सन्तानका भरण-पोषण करता है। अपने चाहे भले ही न पहने और न खाय, किन्तु अपनी सन्तानके खाने-पहननेका प्रबन्ध वह जरूर करता या करनेकी चेष्टा करता है। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि माता-पिताको अपने पुत्रके लालन-पालन और भरण-पोषणमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता और अनेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं।

ऐसी स्थितिमें क्या बालकोंका कर्त्तव्य नहीं है कि वे अपने माता-पिताकी आज्ञाओंका पालन करें, उनके कहे-अनुसार चलें, उनके प्रति सदा कृतज्ञताका भाव रखें, पढ़-लिख जानेपर भी उनके प्रति पूर्ण आदर भाव रखते हुए उनकी यथाशक्ति सेवा-शुश्रूषा करें? माता-पिताके प्रति ऐसी भावना ही मातृ-पितृ-प्रेमके नामसे विख्यात है।

लड़कपनमें बहुतसे लड़के माँको भी गाली देते हैं और बिना झन-झन, पट-पट किये भोजनतक नहीं करते। पिताजी भी यदि पढ़नेको कहें तो स्कूल जानेमें आनाकानी करते हैं। ऐसी आदत अच्छी नहीं।

बहुतसे लड़के पढ़-लिख जानेपर अपने अपढ़ माता-पिताके प्रति आदर-भाव नहीं रखते। यह उन लड़कोंकी अहम्मन्यता है। ऐसा भाव कभी मनमें नहीं आने देना चाहिए।

यदि माता-पिताकी कोई आज्ञा अपनी समझसे अनुचित भी जान पड़े तोभी उसका पालन करना चाहिए। हाँ, उनसे उस सम्बन्धमें नम्रतापूर्वक पूछ-ताछ कर अपनी शङ्का मिटा लेनेमें कोई दोष नहीं है। बाल्यावस्थामें अनुभवकी कमीके कारण बिना सोचे-विचारे माता-पिताकी आज्ञाका पालन करनेके सिवा कल्याणका अन्य कोई मार्ग नहीं।

शास्त्राज्ञा है, 'मातृ-देवोभव, पितृ-देवोभव।' सचमुच इस नश्वर संसारमें मातापिता साक्षात् देवता-स्वरूप हैं। माता-पिताकी सेवासे स्वयं भगवान प्रसन्न रहते हैं और भगवानकी सेवा भी उसमें शामिल है।

प्रायः यह बात देखनेमें आती है, कि मातापिता तो अपनी गाढ़ी कमाईसे लड़कोंका भरण-पोषण करते, उन्हें पढ़ाते और उन्हें तरह-तरहके सुख देनेकी चेष्टा करते हैं; किन्तु बड़े हो जानेपर लड़के अपनी कमाईको मनमाने ढंगपर खर्च करते, अपने और अपने पुत्र-कलत्रके सुखका प्रबन्ध करते और अपने वृद्ध पिता एवं वृद्धा माताको सुखी रखनेकी चिन्ता नहीं करते। ऐसी कृतघ्नता तो लोक-परलोकको बिगाड़ देनेवाली होती है।

मर्य्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र, परशुराम, श्रवणकुमार और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि महानुभावोंकी मातृ-पितृ-भक्ति जगत्प्रसिद्ध है। अपने अन्धे पिता और अन्धी माताको अपने कन्धेपर ढोनेवाले श्रवणकुमारने मातृ-पितृ-भक्तिका उज्ज्वल उदाहरण हमारे सामने रखा है। रामचन्द्रजीने अयोध्याके विशाल राज्यको तिनकेके समान तुच्छ समझ पिताकी आज्ञासे १४ वर्षोंतक वनमें वास किया।

इसलिये मातापिताकी सेवा करनेमें कसर नहीं रखनी चाहिए। उन्हें वृद्धावस्थामें कुछ कष्ट न हो, ऐसा ध्यान रखना चाहिये। धन्य हैं वे लड़के, जिनके माता-पिता उनसे प्रसन्न हों।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

पनेसे वड़ेको गुरु कहते हैं। अज्ञानान्धकारको दूर करनेवालेको भी गुरु कहते हैं। मातापिता द्वारा बालकोंका प्रथम जन्म होता है; किन्तु गुरु द्वारा ही सत्य-शुभ द्वितीय जन्म होता है। अतः गुरु पिता-तुल्य होते हैं और गुरुका स्थान पितासे बढ़-कर होता है।

कोमल-मति बालकोंको सज्ञान बना उनकी अन्तर्चक्षु खोल देना गुरुका काम है। यदि गुरुकी कृपा हो जाय तो मनुष्यका जीवन सार्थक हो जाय; अन्यथा जन्मभर मूर्ख बने अपमानित होकर पशु-जीवन बिताना पड़ता है।

गुरु बड़े उदार होते हैं। उनके प्रति सम्मानपूर्ण उच्च भावना से उनके सम्मुख शिष्य-भावमें रह अपने मनके भाव-कुभाव रखकर ज्ञान-वृद्धि करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। गुरुजीकी सेवा करनी चाहिये। अभिमानपूर्वक उनके सामने कोई बात न करनी चाहिए। अर्जुनने भगवानके सामने अपनी शंका-निवृत्तिके लिए प्रश्न पूछते समय कितने नम्र शब्दोंमें कहा था:—

'शिष्यस्तेहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।'

यानी मैं शिष्य तेरी शरणमें आया हूं। मुझे सुधारिए, समझाइये। इसी प्रकार सब बालकोंको विनम्ररूपमें गुरुके समक्ष रहना चाहिए।

तुलसीदासजी आदि महात्माओंने 'गुरु' और 'गोविन्द' में अन्तर नहीं माना है। 'गोविन्द' जीके पास तक पहुंचानेवाले 'गुरु'-माहात्म्यको 'गोविन्द-माहात्म्य' से भी बड़ा माना है। सच है, गुरुसे बड़ा दानी और कोई नहीं हो सकता। जिनकी कृपा और उदारतासे वाल्मीकि, नारद आदिने अक्षय-कीर्ति कमायी, भला उनसे अधिक दयालु कौन है?

अतः बालको, 'गुरुदेवो भव!' गुरुके प्रति श्रद्धा और विश्वास रखो। इस अथाह संसार-सागरको पार करनेके लिये गुरु-चरण ही एक मात्र नौका है। प्रेमपूर्वक उसीका आश्रय लो। फिर देखोगे, कि तुम्हारा बेड़ा पार है।

देश-प्रेम।

—:0:—

जो भरा नहीं है भावोंसे,
बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है,
जिसमें स्वदेश-अनुराग नहीं॥
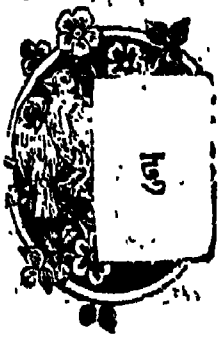
नियाँकी जिन चीजोंके प्रति हमारा प्रेम है उनमें स्वदेश-प्रेमका बड़ा महत्व है। अपनोंके प्रति सबके मनमें प्रेम हुआ ही करता है। जिस देशमें जन्म हुआ, जिस देशकी मिट्टीमें खेला, जिस देशकी भूमिमें उत्पन्न अन्न खाकर बड़े हुए, जिस देशका जल पीया, वायु ग्रहण किया, जिस देशमें हमारे पूर्वज पैदा हुए, जो हमारी जन्मभूमि, पितृभूमि और पुण्यभूमि है, उस स्वदेशके प्रति हमारे मनमें प्रगाढ़ प्रेम होना स्वाभाविक है, और होना ही चाहिए। छात्रावस्थामें परिश्रमपूर्वक विद्या प्राप्तकर सबल एवं सुयोग्य हो देश-सेवा करनी चाहिए। स्वदेश-सेवा करते समय विश्व-प्रेमको अवश्य सम्मुख रखना चाहिए।